योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योग योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष : 29

जनवरी 1997

अंक : 10

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन, सवांई, आगरा

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
श्री भुवनेन्द्र झा

प्रबन्ध सम्पादक :
श्री चन्द्रशेखर 'दिव्य'
आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा
श्री गोविन्द सोनी
ब्र० राजेश चन्द्र शर्मा

जनवरी १९९७

इस अंक में पढ़िए

❀ तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः १
❀ समाधि (विशेष लेख) २
—योगिराज अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज
❀ सिद्ध तथा साधक भक्त ६
—पं० राजेन्द्र प्रसाद पाठक
❀ जीवन यात्रा के चार पड़ाव ९
—डॉ० श्री ओमप्रकाश
❀ शिष्य-हित हेतु सद्गुरु की कार्यशैली १४
—श्रीमति कविता शर्मा
❀ साधना का केन्द्र शरीर नहीं, आत्मा है ! १६
—उपाध्याय श्री अमरमुनि जी
❀ सत्पुरुषों का सत्संग १७
—श्री विष्णुप्रसाद व्यास
❀ मन की प्रसन्नता २३
—स्वामी रामतीर्थ
❀ इच्छा का त्याग —श्री विजयकृष्ण गोस्वामी २६
❀ हमारे अनन्त अनादि सद्गुरु प्रभु २७
—श्री अनन्तेश कुमार भटनागर
❀ धारणा —डा० ऋषिराज वाशिष्ठ २९
❀ श्री कृष्णकान्त झा को जीवनदान ३१
—श्री केशवदेव उपाध्याय
❀ सन्तों की वाणी में सोऽहम् जप का महत्व ३६
—श्री आर० सी० ठाकुर
❀ योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का जन्मोत्सव समारोह १९९६ .... ३८

वार्षिक मूल्य ६० रु० । द्विवार्षिक मूल्य ११० रु० ।
इस अङ्क का मूल्य ६ रु० ।

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष २९ | अङ्क १०

जनवरी १९९७

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थं बहुतर विशदात योगशास्त्रोपदेशात्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः॥

तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः

तपस्विनो दानपरा यशस्विनो, मनस्विनो मन्त्रविदः सुमंगलाः।
क्षेमं न विन्दन्ति बिना यदर्पणं, तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः॥

अर्थात्

बड़े-बड़े तपस्वी, दानी, यशस्वी, मनस्वी, सदाचारी और मन्त्रवेत्ता जब तक अपनी साधनाओं को तथा अपने-आपको उनके चरणों में समर्पित नहीं कर देते, तब तक उन्हें कल्याण की प्राप्ति नहीं होती। जिनके प्रति आत्म-समर्पण की ऐसी महिमा है, उन कल्याणमयी कीर्तिवाले भगवान् को बार-बार नमस्कार है।

विशेष लेख :-

समाधि

ॐ योग-योगेश्वर
श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

ध्यान और समाधि में अन्तर केवल मात्र इतना ही है कि ध्यान में योगी त्रिक ज्ञान की स्थिति के अनुसार अपने आपको ध्येय से अलग देखता है। और ध्येय को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। किन्तु इसका प्रयत्न व्यर्थ नहीं होता। मनुष्य को घबराना नहीं चाहिये, पहिले नियम को सामने रखना चाहिए।

स तु दीर्घकालनै रन्तर्यसत्कारसेवितोदृढ भूमिः ।

अर्थात् लम्बे समय तक लगातार और आदरपूर्वक किया हुआ अभ्यास फल का दाता होता है। इसलिये योगी धैर्यपूर्वक ज्यों-ज्यों अपने अभ्यास को बढ़ाता है तभी वह समाधि का अधिकारी बनता है और उसका मन त्रिक ज्ञान को छोड़कर ध्येयाकार में परिवर्तित होने लगता है। ध्यानावस्था में साधक ध्याता था और इष्टदेव का ध्यान करता था उस अवस्था में ध्याता, ध्यान और ध्येय ये तीनों वस्तुयें अलग-अलग भासित हो रही थी किन्तु समाधि प्राप्त होने पर भगवान पतञ्जलि देव बतलाते हैं—

तदेव।र्थमात्रनिर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधि ।

अर्थात् जिसमें अर्थमात्र ही निर्भासित होता रहे और अपना स्वरूप भी समाप्त प्रायः हो जाये। साधक की अपनी वृत्ति तदाकार होकर ध्येयाकार में पूर्णरूपेण परिणत हो जाये उसी स्थिति का नाम समाधि है। उपनिषद् हमें बतलाते हैं—

समाधि समतावस्था जीवात्म परमात्मनः ।

अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा की समतावस्था को समाधि कहते हैं जिसमें मैं ईश्वर से भिन्न हूँ ऐसी वृत्ति समाप्त होकर मैं स्वयं वही हूँ ऐसी वृत्ति ही कायम रहने लगे और योगी अपने आप को प्राणीमात्र के अन्तःकरण के अन्दर देखने लगे तो समझ लेना चाहिए कि उसकी योग्यता है। भगवान् जगदात्मा श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने मुखारविन्द से श्रीमद्भागवत गीता के छठवें अध्याय में स्वयं कहा है—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ (गीता ६/२९)

अर्थात् प्राणीमात्र में अपने आपको और प्राणीमात्र को अपने अन्दर केवल मात्र उक्त योगी ही देखता है अन्य नहीं। यह स्थिति योगी को समाधि में ही उपलब्ध हो पाती है। जिस योगी का मन समाधिवान बन जाता है और उसकी समाधि यथार्थ रूप को धारण

कर लेती है तो स्वतः ही संयम होने लगता है। संयम की परिभाषा भगवान पतञ्जलि देव लिखते हैं—

त्रयमेकत्र संयमः ।

अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि तीनों एक विषयक होती रहें तो ही मनुष्य संयम को प्राप्त होता है। कहने का अभिप्राय यह है कि साधक जिस समय धारणा का अभ्यास करे, वह धारणा केवल एक ध्येय का ही अवलम्ब करने वाली हो किसी भी प्रकार से प्रत्ययान्तर प्रकट न हो। धारणा-काल में जिस ध्येय का चिन्तन किया जावे उस चिन्तन-स्थिति में कोई दूसरा ध्येय कल्पना में भी सामने न आये। धारणा काल में चिन्तन किया हुआ ध्येय उसके सामने प्रकट हो जावे तो समझ लेना चाहिए कि उसने ध्यान की भूमिका पर विजय प्राप्त कर ली है किन्तु इतना हो जाने पर भी योगी को प्रमादान्वित न होना चाहिये जिससे कि वह अपने मन में समझ बैठे कि पूर्णता को पा लिया है, आगे कुछ भी प्राप्तव्यावशेष नहीं है ऐसी भावना बन जाने पर भी योगी को अन्तराय घेर लेंगे और वह समाधि तक नहीं पहुँच पायेगा। अब इस प्रकार के आलस्य व प्रमाद से बचकर योगी अपने ध्येय का ही अवलम्बन लेकर आगे बढ़ने का प्रयत्न करेगा तो इसके ध्यान का नाम भी कोई दूसरा ज्ञान स्पर्श नहीं करेगा और शनैः-शनैः उसका मन समाधि रूप में परिवर्तित हो जायेगा। समाधि हो जाने पर भी योगी की वृत्ति किसी और विषय में तदाकार न हो तब वह समाधि पर पूर्णरूपेण विजय प्राप्त कर लेगा और उसको संयम सिद्ध हो जायेगा। संयम सिद्ध हो जाने के बाद उस संयमित मन को योगी जहाँ-जहाँ लगायेगा वहाँ-वहाँ की शक्तियों को अवश्य प्राप्त कर लेगा। इसी सिद्धान्त को लेकर समाधि पर विजय प्राप्त करने वाला योगी सिद्धि शक्तियों का भण्डार बन जाता है। वह जिस प्रकार की जिस ताकत को प्राप्त करना चाहता है उसको वह ताकत बराबर उपलब्ध होती चली जाती है और ज्यों-ज्यों वह योगी संयम पर विजय प्राप्त करता है त्यों-त्यों उसके सामने समाधि प्रज्ञा स्पष्ट रूप से प्रगट होती चली आती है। भगवान पतञ्जलि देव ने कहा—

तज्जयात प्रज्ञाऽऽलोकः ।

अर्थात् संयम सिद्ध हो जाने पर योगी को प्रज्ञा लोक हो जाता है। जैसे-जैसे संयम स्थिर-स्थिर पद को प्राप्त होता है वैसे-वैसे ही समाधि प्रज्ञा निर्मल होती चली जाती है। इस प्रकार योगी संयम सिद्ध हो जाता है और संयम सिद्ध हो जाने पर—

तस्य भूमिषु विनियोगः ।

अर्थात् संयम सिद्ध हो जाने पर उस संयम की भूमिकाओं में विनियोग किया जा सकता है। जैसा कि हमने पहले बता दिया है संयमी मन को जहाँ लगायेंगे वह वहाँ के अर्थ ज्ञान को प्राप्त कर लेगा। योगी को चाहिये पहले पहल संयम का विनियोग साधारण भूमियों में ही करे जैसे परिधि संज्ञा, रूप दर्शन, गन्ध, साक्षात्कार, रसावलोकन आदि के हर स्वरूप को जानने के लिए तालु में संयम करे, दिव्य शब्द सुनने के लिए जिह्वा मूल में संयम करे। दिव्य घ्राण ग्रहण करने के लिए नासिकाग्र भाग में संयमित करे और रसास्वादन के लिए जिह्वा के अग्र भाग में संयम करे। यह योगी के संयमित मन के विषय हैं,

जिनमें संयम करने से वह मोटे-मोटे ज्ञान प्राप्त कर लेगा। कदाचित कोई योगी एकायक आत्म-साक्षात्कार के लिए संयम करता है तो वह विफल हो सकता है, जिस प्रकार से पहली, दूसरी श्रेणी में अध्ययन करने वाला व्यक्ति एम० ए० के कोर्स को नहीं पढ़ सकता। पढ़ने वाला और पढ़ाने वाला दोनों का प्रयास व्यर्थ हो जाता है, इसी प्रकार छोटी भूमिकाओं की संयम के बिना जो योगी ऊँची भूमिकाओं में संयम करने का प्रयत्न करता है वह हताश होकर बैठ जाया करता है। उसके सामने इतनी निराशा हो जाती है कि वह कभी फिर संयम की ओर चलने का प्रयत्न भी नहीं करता। हाँ, एक बात अवश्य है उसको भगवान व्यासदेव ने भाष्य में प्रगट कर दिया है। जिसने ईश्वर अनुग्रह से आगे की भूमिकाओं को जीत लिया है उसको फिर निम्न श्रेणियों में संयम करने की आवश्यकता नहीं। कई-कई इस प्रकार के बुद्धिमान छात्र होते हैं जो स्कूलों में बाकायदा कोर्स को न भी करते हैं, हाईस्कूल, इण्टरमीडियेट, बी० ए०, एम० ए० आदि की परीक्षाएं सीधे दे डालते हैं, इस प्रकार के छात्रों को अपने पुरुषार्थ से नीचे की परीक्षाएं देने की आवश्यकता नहीं रहती। इसी प्रकार जो लोग ईश्वर की परम कृपा से जितोश्च भूमि हो जाते है, उनको फिर नीची श्रेणियों के संयम करने की आवश्यकता नहीं रहती है, उनका मन संयमित हो चुका है उसको वह जहाँ लगायेगा वहाँ का फलभागी हो ही जायेगा। इसलिए भगवान पतञ्जलिदेव ने संयमित मन वाले योगी के लिये बहुत से विषय लिखे हैं जिनमें साधारण अभ्यास के बाद योगी संयम कर सकता है और वहाँ-वहाँ के ज्ञान को प्राप्त करके एक विशेष शक्ति को अपने अन्दर संग्रहित कर लेता है। थोड़ी देर के लिये योगी परिचित ज्ञान को प्राप्त करना चाहता है। भगवान पतञ्जलिदेव कहते हैं—

प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ।

अर्थात् दूसरे के चित्त में संयम करने से योगी को उसका ज्ञान हो जाता है किन्तु वह चित्त किस रंग में रंगा हुआ है यह ज्ञान योगी को तभी होगा जब वह जानने की इच्छा करेगा कि दूसरे का चित्त किस विषय का अवलम्ब कर रहा है। पहले-पहल परिचित साक्षात्कार के लिये उस व्यक्ति के हावभाव को देखकर उसके चित्त को जानने की इच्छा करता है और संयम करता है, संयम के अतिरिक्त सर्वसाधारण व्यक्ति भी इंगितों से चित्त के स्वरूप का कुछ-कुछ अनुमान कर लिया करते हैं। नीति शास्त्र का वचन है कि—

आकारं रैगिन्तंगत्या चेष्टया भाषणेन च ।
नेत्र वक्त्रविकारैश्च ज्ञायते अन्तर्गतम् मनः ॥

अर्थात् आकृति को देखकर, इशारों को देखकर, चलने की गति को देखकर, शरीर की हरकतों को देखकर, आँख और मुख के विकारों को देखकर भीतर का मन जाना जाता है। एक मनुष्य ने देखा कोई व्यक्ति बड़ी ही प्रसन्न मुद्रा में आ रहा है, उसको देखकर सर्वसाधारण मनुष्य अवश्य कह ही देगा—क्यों जी ? आज तो आप बड़े खुश मालूम पड़ते हैं ? क्या मिल गया हमें भी तो बता दीजिये और उसका वह अनुमान गलत नहीं होता। कदाचित् वह व्यक्ति नहीं बतलाये तो योगी उसके प्रसन्न मुद्रा वाले चित्त को ही अपने संयम का विषय बनायेगा और संयम करने पर वह यह अवश्य जान ही लेगा कि

हाँ अवश्य ही यह प्रसन्न है ही। किन्तु यह प्रसन्न क्यों है, किस कारण से है यह जानने का विषय योगी ने अपने संयम को नहीं बनाया है, अभी तक तो योगी ने अपने संयम का विषय केवल इतना ही बनाया था कि वह व्यक्ति जो आकर इङ्गित और गति से प्रसन्न काल में पड़ता है वह वस्तु तो प्रसन्न है ही या नहीं। उतना ही उसने जान लिया कि वह व्यक्ति प्रसन्न अवश्य है। अब वह क्यों प्रसन्न है और कैसे प्रसन्न है इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिये योगी को दूसरे के चित्त के विषय के अन्दर संयम करना पड़ेगा। तब वह यह जान पायेगा कि इसके प्रसन्न होने के यह कारण हैं, यह परचित्त ज्ञानादि योगी के संयम के मोटे विषय हैं, उसके बाद वह जहाँ-जहाँ संयम करेगा उस विषय को अवश्य-अवश्य जान लेगा: यही एक उपाय है जिसको प्राप्त करके मनुष्य ज्ञान-विज्ञान तृप्तात्मा बन जाता है। वह प्रकृति के जिन-जिन विश्लेषणों को समझना चाहता है समझ लेता है। वह तत्वों के परिणाम को जान लेता है, उसके अन्दर इस संयम के आधार पर यह ताकत आ जाती है कि यदि वह चाहे तो अपने शरीर को बालरूप बनाये रखे, यदि वह चाहे तो अपने को युवा बनाकर रखे, वह चाहे तो अपने को अपने आपको अति वृद्ध दिखलाये। आकाश गमन परकाय प्रवेश, लोकोत्तर ज्ञान, यह सभी संयम सिद्धयोगी के लिये, साधारण योग विद्या को "यस्मिन ज्ञाते सर्वं मिद ज्ञातं भवति:" ऐसा कहा है अर्थात् जिसके जान लेने पर सब कुछ जान लिया जाता है वह हमारी योग विद्या है। इस लेख में हमने यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि योगी अपने अन्दर शक्ति संचरित इस उपाय से कर सकता है। योगी के पास संयम ही इस प्रकार की निधि है कि जिसको पाकर वह लोग आकाश, पाताल को जानते हैं। एक भूत, भविष्य के ज्ञाता हैं, और 'कर्तुं न अकर्तुं म' ताकत वाले हो जाते हैं सर्वसाधारण को चाहिए कि योग के पवित्र मार्ग को ग्रहण करते हुए वह अपने आपको सशक्त बनावें एवं जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहें, यदि वह अपने आपको इस पवित्र उन्नति के मार्ग पर बढ़ाने का प्रयत्न करेगा तो सर्वशक्तिमान प्रभुजी की शक्ति उसको अवश्य सहायक होगी और वह अपने चरम लक्ष्य को पायेगा।

★ किसी से 'दो' यों कहना मरण के समान है। मर जाना भला है, किन्तु वाणी द्वारा अथवा अन्य किसी चेष्टा द्वारा अपनी आवश्यकता की सूचना देना अपना पतन करना है। साधु को भूख लगने पर रोटी माँग लेनी चाहिये। मधुकरी वृत्ति से रोटी माँगना तो गृहस्थों को कृतार्थ करना है। किन्तु 'दो' इस शब्द के कहते ही शरीर में स्थायी रूप से रहने वाले पाँच देवता चले जाते हैं। पाँच देव ये हैं—ह्री, श्री, धी, ज्ञान और गौरव। केवल माँगने के संकल्पमात्र से चेष्टा में मलिनता आ जाती है। माँगना बड़ा भारी पाप है।

★ जगत् का कोई पदार्थ नित्य नहीं है। धन, विद्या, बुद्धि, गुण, गौरव आदि सभी मृत्यु के साथ धूलि में मिल जाते हैं।

सिद्ध तथा साधक भक्त

श्री पं० राजेन्द्र प्रसाद पाठक

सिद्ध तथा 'साधक' भक्तों को भगवान अपना प्रिय बतलाते हैं। इतना ही नहीं बल्कि श्री प्रभु 'सिद्ध' भक्तों को 'प्रिय' तथा 'साधकों' को अत्यन्त प्रिय कहकर बताया कि 'सिद्ध भक्त' भगवान के बड़े पुत्र के समान तथा 'साधक भक्त' हमारे छोटे अबोध बालक के समान हैं।

"मोरे प्रौढ़ तनय सम ज्ञानी। बालक सुत सम दास अमानी॥"

(श्रीरामचरित मानस ३/४३/४)

'सिद्ध भक्त' जहाँ भगवत्प्राप्ति में संसार से तीव्र वैराग्य की भावना रखता है, वहीं 'साधक भक्त' श्री प्रभु प्राप्ति में अपनी तीव्र उत्कण्ठा (भावना शक्ति) दर्शाता है। दोनों ही प्राणिमात्र में अपने प्रभु को ही व्याप्त रूप से रूपमय देखते हुए सभी प्राणियों के प्रति बिना किसी स्वार्थ के स्वाभाविक ही मैत्री और दया का भाव रखते हैं।

निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं विरोध।

(मानस ७/११२ [ख])

अतः उन्हें हर युग में युग का ही उपकारी माना गया है। उनका जन्म ही समस्त संसार के कल्याण हेतु होता है। वह भगवान के ऐसे प्रिय भक्त होते हैं जिनके दर्शनकर जीव स्वयं कल्याण प्राप्त करता है। वे तो अपने अनिष्ट करने वालों के प्रति भी यही सोचते हैं कि अनिष्ट में भी यह निमित्त बनकर हमारे पूर्व संचित पाप-कर्मों के भुगतान हेतु हमें शुद्ध करने के लिए आया हुआ है, अतः यह विशेष रूप से आदर का पात्र है।

हेतु रहित जग-जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥

(मानस ७/४७/३)

ऐसे हैं परम करुणानिधान श्री प्रभु, जो कि समस्त कर्मों के भोग-मुक्त दाता है। उनकी वाणी ही समस्त कर्मों में अभय प्रदान करने वाली है। श्रीमद्भागवत संकेत करता है कि—"हे प्रभो! आपका कथामृत संसार में जो संतप्त प्राणी है, उनको जीवन देने वाला है, शान्ति देने वाला है, अच्छे-अच्छे महापुरुष भी उसका हृदय से वर्णन करते हैं, वह सम्पूर्ण पापों अर्थात् भगवद्विमुखता का नाश करने वाला है, कानों में (आपकी अमृतमयी वाणी) पड़ते ही सब तरह से मङ्गल ही मङ्गल देने वाला है, सन्त महापुरुषों के द्वारा उसका विस्तार से वर्णन किया गया है। ऐसे (आपके) कथामृत का पृथ्वी पर जो कथन करते हैं, वे संसार को बहुत विशेषता से दान देने वाले हैं अर्थात् संसार का सबसे अधिक उपकार हित करने वाले हैं।"

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवण मङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ।।
(श्रीमद्भागवत १०/३१/९)

इस प्रकार ज्ञात हुआ कि 'सिद्ध' तथा 'साधक' का भेद उपासना की दृष्टि से तो है परन्तु दोनों भक्तों की उपासना में उपास्यतत्व श्री प्रभु ही है। उपासना या भक्ति साधक की रुचि, विश्वास, योग्यता (श्रद्धा) के अनुसार होती है, भक्तों की भिन्न-भिन्न रुचि, विश्वास, योग्यता (श्रद्धा) होने के कारण भक्ति भी भिन्न-भिन्न रूपों से होती है किन्तु सम्पूर्ण तरह के भक्तिपरक भावों के अन्त में एक ही उपास्यतत्व परम करुणार्णव श्री प्रभु जी की ही सत्ता सम्प्राप्त होती है, जिसे हम "समग्र-ब्रह्म" कह देते हैं। श्री भगवान मात्र 'सिद्ध और साधक' के ही व्यक्तित्व वाले लोगों को ही नहीं प्राप्त होते, अपितु उनके दर्शन का सुलभ साधन अनन्य भक्ति है। श्री गीता जिसे संकेत करती है—

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ।।
(गीता ११/५३)

वस्तुतः यदि जीव अपने सामर्थ्य, समय, समझ, सामग्री आदि को श्री भगवान के चरणों में समर्पण कर शरणागत हो तो उसकी रक्षा हेतु; द्रौपदी की भावापूर्णता-वश पूर्णेन्दु हो प्रकट रूप लीलामयी कला दिखाना आदि प्रमाणिक शरणागत वत्सलता तो मिलती ही है, किन्तु समय-संयम-रूपी-साधन-सत्सङ्ग के संयोगादि में भी, जो कुसङ्ग हो जाया करता है वह ही अभिमान का कारण बनता है, चाहे वह देहाभिमान हो या कर्माभिमान हो। परन्तु 'सिद्ध और साधक' दोनों ही इन भावनाओं से परे होते हैं। 'सिद्ध भक्त' —"मैं भगवान का ही अंश हूँ" ऐसा प्रेम भगवान में जागृत कर, राग रहित हो सर्वत्र भगद्भाव का अनुभव कर परम शान्ति पाता है। उसकी इस अवस्था में उससे चाहे कोई वैर, प्रीति, दुर्व्यवहार, या उसे मारे-पीटे, अनिष्ट करे इन सब परिस्थितियों में वह अपने शरीर से कोई सम्बन्ध न मानकर, भगवान की मरजी या कृपा मानता है। और 'साधक भक्त' भी सब देश में, सब काल में, सम्पूर्ण व्यक्ति वस्तुओं में—मैं केवल भगवान का ही हूँ और केवल भगवान ही मेरे हैं। अन्य कोई भी मेरा नहीं है तथा मैं अन्य किन्हीं का भी नहीं हूँ—ऐसा अतिशय प्रेम जागृत कर, भगवान में लीन रहता है और ऐसा होता ही है कि जो स्वतः अति प्रिय लगता है उस प्रेम-प्रियता में अपनापन की जागृति अपनी मुख्य भूमिका अदा करती है। अतः 'सिद्ध भक्त' यदि भक्ति रूपी बादल है तो 'साधक' भक्ति-समुद्र से कम नहीं। इसमें श्रीमद्भागवत महापुराण अमृतमय सन्देश देता है कि "सार-तत्व को धारण करने वाले (भक्त या सन्त) पुरुषों का वह स्वभाव होता है कि उनकी वाणी, कान और अन्तःकरण भगवान की लीलाओं को गाने सुनने और चिन्तन करने के लिये ही होते हैं। जैसे लम्पट पुरुषों को स्त्रियों की चर्चा में नयापन मालुम होता है ऐसे ही (साधक या सिद्ध) भक्तों को भगवान की लीलाओं में, कथाओं में, नित्य नयापन मालूम देता है।"

सतामयं सारभृतां निसर्गो यदर्थवाणीश्रुतिचेतसामपि ।
प्रतिक्षणं नव्यवदच्युतस्य यत् स्त्रिया विटानामिव साधुवार्ता ।।

(श्रीमद्भागवत पुराण १०/१३/२)

ऐसी परिस्थितियों में ही 'साधक सिद्ध' भक्त रहते हैं अतः भगवान के साथ उनका स्वतः सिद्ध घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है, वह सर्वदा विचार करते हैं कि हमारे प्राण प्रकृति के हैं और हम स्वयं भगवान के अङ्ग हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने तो कह ही दिया कि—

"एवं स्वभक्तयो राजन् भगवान् भक्त भक्तिमान्"

(श्रीमद्भागवत १०/८६/५९)

तथा ऐसा भी बताया कि—"स्वयं को मेरे में अर्पित करने वाला भक्त मुझे छोड़कर ब्रह्मा का पद, इन्द्र का पद, सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य, पातालादि लोकों का राज्य तथा योगियों की समस्त सिद्धियां और मोक्ष को भी नहीं चाहता।"

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यं ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत् ।।

(श्रीमद्भागवत महापुराण ११/१४/१४)

योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण इतना बताने के बाद भी अपने भगवद् भक्तों की बड़ाई से नहीं अघाते और कहते हैं कि—"श्री प्रभु प्रेमी भक्तगण मेरी सेवा को छोड़कर सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य (इन पांच प्रकार की) मुक्तियों को देने पर भी नहीं लेते।"

सालोक्य सार्ष्टि सामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ।।

(श्रीमद्भागवत ३/२९/१३)

अस विचारि हरि भगत सयाने । मुक्ति निरादर भगति लुभाने ।।

(मानस ७/११९/४)

सूचना

माघ मेला शिविर इलाहाबाद

श्री सिद्ध गुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (आगरा)

सभी सत्संगी भाइयों को बड़े हर्ष के साथ सूचित किया जाता है कि हर वर्ष की भांति इस वर्ष भी श्री सिद्ध गुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (आगरा) का माघ मेला शिविर रामानुज मार्ग, इलाहाबाद में दिनांक २२-१-९७ से दि० २२-२-९७ तक रहेगा। वहां सभी प्रकार का उत्तम प्रबन्ध है। शिविर में आने वाले सत्संगी भाई-बहन अपना बिस्तर अपने साथ अवश्य लाने का कष्ट करें।

निवेदक : श्री सिद्ध गुफा साधक मण्डल (इलाहाबाद)

जीवन यात्रा के चार पड़ाव

ब्र० श्री ओमप्रकाश (लखनऊ)

हमारे वैदिक ऋषियों ने मानव-जीवन को एक यात्रा, संसार को मार्ग तथा ईश्वर को इस यात्रा का लक्ष्य बताया है। इस यात्रा में ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम तथा सन्यासाश्रम चार पड़ाव हैं। पड़ाव का अर्थ है ठहराव, जहाँ कुछ समय ठहरकर दूसरे पड़ाव पर पहुँचने की तैयारी करना होता है। जीवन की प्रारम्भिक यात्रा प्रथम पड़ाव का नाम ब्रह्मचर्याश्रम है। आज हम इस आश्रम प्रणाली को भूल गए हैं। वैदिक काल में मनुष्य के जीने की अवधि १०० वर्ष की मानी गई थी। इसी आधार पर मनुष्य की आयु का विभाजन चार भागों में किया और हर विभाग में २५ वर्ष की अवधि को निर्धारित किया गया था। यह ब्रह्मचर्याश्रम २५ वर्ष की अवधि को निर्धारित किया गया था। यह ब्रह्मचर्याश्रम २५ वर्ष तक संसार के विषय भोगों से अलग रहकर गृहस्थाश्रम के लिए एक प्रकार से तय्यारी का आश्रम है। ब्रह्मचारी का जीवन त्याग और तपस्या का जीवन है। इसके लिए बालकों को घर गृहस्थी से दूर जंगलों में बने गुरुकुलों में विद्या अध्ययन के लिए रखा जाता था। ब्रह्मचारियों को ब्रह्म विद्या का ज्ञान देने के साथ साथ ब्रह्म के ध्यान द्वारा ब्रह्मानन्द का रसास्वादन कराया जाता था जिसका उद्देश्य होता था कि यह ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम में आकर ब्रह्मानन्द के मुकाबले में विषयानन्द को तुच्छ और क्षणिक समझकर श्रेष्ठ और शाश्वत ब्रह्मानन्द को पाने के लिये इसका त्याग कर आगे चले।

संसार का प्रारम्भ भोग है, लेकिन भोग बिना त्याग और तपस्याके नहीं भोगा जाता। तभी तो ईशावास्य उपनिषद् के ऋषि ने संसारी लोगों को चेतावनी देते हुए कहा था—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत तेनत्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध कस्यस्विद्धनम्।

रे मानव! इस संसार का सम्पूर्ण भोग्य पदार्थ तेरे परमपिता परमात्मा का है। यह सम्पूर्ण ऐश्वर्य और वैभव उसका है, उसका ही समझकर इसका उपभोग करना है। जैसे यह भोग पदार्थ तुझे मिले हैं वैसे ही ये सब किसी दिन तुझसे छूट भी जायेंगे—यह समझकर इन्हें अपना न समझकर इनका उपभोग कर अर्थात् त्यागपूर्वक इनका उपभोग कर निवृत्तिपूर्वक प्रवृत्ति कर जब छोड़ने का समय आये तब छोड़ने के लिए तैयार रहकर उपभोग कर। इस व्यावहारिक सत्य को लेकर हमारे पूर्वज चले थे। संसार के भोगों का भोगना सीखने से पहले संसार में त्याग और तपस्या सीखने की जरूरत है। इस

ब्रह्मचर्याश्रम में भोगों को भोगने की शक्ति को अर्जित करना ही होता है क्योंकि शक्ति-हीन व्यक्ति भोगों को न भोगकर भोगों के द्वारा स्वयं ही भोगा जाता है, अर्थात् रोगों का शिकार बन जाता है। भोग भोगने से शक्ति क्षीण होती है। इसीलिए ब्रह्मचर्याश्रम में भोग भोगने की शक्ति को अर्जित करने का आश्रम है। भोग भोगने की लालसा मन में हो और भोग भोगने की शक्ति न हो तो इससे बढ़कर मनुष्य की दुर्गति और क्या हो सकती है।

जीवन के प्रारम्भिक २५ वर्ष ब्रह्मचर्याश्रम की कक्षा में रहने के बाद बाल से युवा होकर गृहस्थाश्रम की दूसरी कक्षा में प्रवेश करता है। इस कक्षा में सुखपूर्वक २५ वर्ष तक विषय भोग गृहस्थ का सुख भोगकर अगले पड़ाव की ओर इसका त्याग कर चलना होता है। २५ वर्ष गृहस्थ भोगने के बाद तब तक मनुष्य की अवस्था ५० वर्ष की हो जाती है। यह गृहस्थ आश्रम इतना मन-मोहक, मोह-ममतामई, मैं, मेरी, वाला होता है जिसमें पड़कर मनुष्य इतना बुरी तरह से फँसता है कि इसमें से निकलने का उसका मन ही नहीं करता, इससे निकलते हुए महान् दुःख का अनुभव करता है। आजकल तो अधिकांश लोग गृहस्थाश्रम को ही जीवन का ही लक्ष्य अन्तिम पड़ाव समझकर इसीमें पड़े-पड़े अपना जीवन समाप्त कर देते हैं। वो इस बात को भूल ही जाते हैं कि गृहस्थ एक आश्रम है, पड़ाव है, कक्षा है इसमें प्रवेश कर २५ वर्ष तक गृहस्थ की शिक्षा लेकर अगली कक्षा में प्रवेश करना है। लेकिन गृहस्थ आश्रम की कक्षा में प्रवेश करने के बाद इसमें से निकलने का नाम ही नहीं लेते। गृहस्थी लोग गृहस्थ में इतने आसक्त और लिप्त हो जाते है कि न तो वह गृहस्थ ही अपने परिवार, घर-द्वार को छोड़ना चाहता है और ना ही उसकी पत्नी, बच्चे ही उसे छोड़ने देते हैं। लेकिन कुछ भी हो इस गृहस्थ आश्रम से आखिर एक दिन निकलना तो है ही, इसे छोड़ना तो है ही फिर चाहे धक्के खाकर निकाले जाओ तब निकलो, चाहे स्वेच्छा से घर-गृहस्थी का त्याग करके अगले पड़ाव, अगली कक्षा में प्रवेश करो।

यह गृहस्थ आश्रम भी एक ऐसा चक्रव्यूह है कि जिसमें अभिमन्यु की तरह मनुष्य आसानी से प्रवेश तो कर जाता है, लेकिन इसमें से निकलने की विधि का ज्ञान न होने के कारण निकल नहीं पाता और अन्त में वीर अभिमन्यु की भाँति अपने ही स्वजनों, परिवारीजनों की मोह-ममता के द्वारा बुरी तरह से घिर कर मारा जाता है। अधिकांश लोग गृहस्थाश्रम से दो आगे के पड़ावों तक बिना पहुँचे गृहस्थाश्रम को ही जीवन का लक्ष्य समझकर इसी में मर जाते हैं। यही कारण है जिसके परिणामस्वरूप उनको बार-बार गृहस्थी की चक्की में पिसना पड़ता है। बल्कि हर मनुष्य को चाहिए तो यह कि ५० साल की उम्र के बाद घर गृहस्थी का भार अपने बाल-बच्चों पर छोड़कर अपनी जीवन यात्रा में अगले पड़ाव की ओर चल देना चाहिये। लेकिन आज के अज्ञ लोग ऐसा न करके घर-गृहस्थी के घेरे में ही ऐसे घिर जाते हैं कि इससे निकलने की बात पूर्णतः भूल ही जाते हैं। उनकी यह बात समझ में नहीं आती कि जीवन एक यात्रा है इसमें हमें एक ग्रहण दूसरे का त्याग करते हुए यात्रा में आगे बढ़ना है भले ही हम चाहें या न चाहें। जो व्यक्ति गृहस्थाश्रम को छोड़कर स्वयं अपनी सूक्ष्म समझ से आगे चल देते हैं तो उनकी मान-मर्यादा व प्रतिष्ठा भी बनी रहती है

को मोही, मूढ़-व्यक्ति ऐसा नहीं करते, उन्हें उन्हीं के बच्चे और बच्चों की बहुएं धक्के देकर बाहर निकाल देते हैं। बहुऐं सास-ससुर को दिन-रात कोसती रहती हैं ये बुड्ढे व बुढ़िया न तो खुद शान्ति से जीते हैं और न जीने देते हैं। प्रायः सासों की बहुओं से नहीं बनती, क्योंकि वह अपने रौब में बहुओं को रखकर उन पर अपनी हुकूमत चलाना चाहती हैं। इधर पिता भी अपने रौब में अपने बेटों को रखना चाहता है। इसलिए पिता की अपने लड़कों से नहीं बनती।

गृहस्थाश्रम के बाद अगला पड़ाव आता है वानप्रस्थाश्रम का। २५ वर्ष गृहस्थाश्रम में रहने के बाद माता-पिता अब अगली कक्षा वानप्रस्थ में प्रवेश करें क्योंकि उनके पुत्र गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर चुके हैं। हर मनुष्य स्वभावतः स्वतन्त्रता चाहता है। अगर लड़कों के माता-पिता घर में बने रहेंगे तो उनके लड़के अपनी इच्छानुसार काम नहीं कर पावेंगे। दुनिया में जिनकी सबसे अधिक बन सकती थी, माता-पिता और पुत्रों की उन्हीं से इतनी बिगड़ जाती है कि अड़ोसी-पड़ोसी तमाशा देखते हैं बेटे और बाप की लड़ाई का। लेकिन हुकूमत, शासन, सत्ता एक ऐसी चीज है जिसे अपने हाथ से कोई किसी दूसरे को देने को तैयार नहीं होता। कोई छीन भले ही ले। परन्तु राजी-खुशी कोई नहीं देता। यही कारण है सास-बहू और बाप-बेटे की लड़ाई का। वानप्रस्थाश्रम इस समस्या का उचित हल था, जब अन्त में घर-परिवार को छोड़ना ही है तो धक्के खाकर और बेइज्जती से छोड़ने के बजाय स्वयं ही उसे क्यों न छोड़ दिया जाय। माता-पिता के सामने बच्चे और बहुओं के व्यवहार से यह बात बिल्कुल साफ हो जाती है कि मां-बाप बच्चों के लिए भले ही मोह वश जान दे दें लेकिन बच्चों का माता-पिता के प्रति कोई ममत्व नहीं होता। बुड्ढे-बुढ़ियों के लिए यही प्राकृतिक संकेत है वानप्रस्थाश्रम में जाने का। प्रवृत्ति के बाद निवृत्ति ही वानप्रस्थ है। वानप्रस्थ का अर्थ है वन में जाने की तैयारी। वन में अभी नहीं गये हैं लेकिन अब घर-गृहस्थी की ओर पीठ करके वन की ओर मुख कर लिया है। क्या फल पक जाने पर स्वयं वृक्ष से टपक नहीं पड़ता, फल के पक जाने पर उसका डाली से अलग हो जाना ही वानप्रस्थ है। दो ही रास्ते हैं या तो ५० या ६० वर्ष की उम्र होने पर स्वयं ही जाने की तैयारी कर ले अथवा तब तक घर में बैठे रहें जब तक कोई हमें घसीटकर धक्के देकर बाहर न निकाल दे। वानप्रस्थ मजबूर होकर घर-परिवार, संसार छोड़ना नहीं है बल्कि जान-बूझकर अपनी मर्जी से परिवार छोड़ना है। पड़ाव को घर मानकर ठहरे रहना नहीं है बल्कि एक पड़ाव से दूसरे पड़ाव पर पहुँचने की तैयारी करना है। आखिर एक न एक दिन घर-परिवार, संसार ही नहीं शरीर को भी छोड़ना पड़ता है सदा जिसको रहना हो वह चिपका रहे इनसे।

वानप्रस्थी घर-गृहस्थी का भार लड़कों पर छोड़कर घर में ही अथवा घर से दूर रहकर दोनों अपना जीवन-यापन करते हैं ताकि जरूरत पड़ने पर बच्चे दुनिया के घर-गृहस्थी के अनुभव से गुजरे माता-पिता से परामर्श ले सकें। अब इसके बाद चौथा और अन्तिम पड़ाव जीवन-यात्रा का है सन्यासाश्रम। अब वह वानप्रस्थी पूर्णतः जङ्गल में चला जाता है और सन्यासी का जीवन जीने लगता है। जङ्गल की खुली हवा, प्राकृतिक शान्त वातावरण। प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम में जङ्गल के

खुले प्राकृतिक वातावरण में रहना, इसके बाद गृहस्थाश्रम में शहरों में अथवा गांवों में रहना। अब फिर सन्यासाश्रम में जङ्गल में चले जाना होता है। गृहस्थाश्रम में या तो मनुष्य एकदम रागी हो जाता है अन्यथा विवेकी मनुष्यों को वैराग्य हो जाता है। क्योंकि गृहस्थ में जो सार्थक दीखता था अथवा जो अपना लगता था वह निरर्थक और पराया दीखने लगता है। लेकिन अविवेकी बूढ़े गृहस्थी लोग बाबा बने अपने पोता-पोती को कन्धे पर चढ़ाकर घूमते हैं। नाती-पोतों के लिए बूढ़ा कभी घोड़ा बनता है तो कभी गधा बनकर बच्चों को खुश करता है। वानप्रस्थी घर का ही नहीं पूरे गांव-मुहल्ले से नाता तोड़कर जङ्गलवासी हो गया है। बनी-बनाई गृहस्थी को छोड़ना आसान नहीं है लेकिन एक दिन तो बरबस घर-परिवार छोड़ना ही पड़ेगा। चाहे घर के परिवार को रोते-धोते छोड़ो अथवा स्वेच्छा पूर्वक हंसते-हंसते छोड़ो। सन्यासी पारिवारिक मोह-ममता की, मेरे-तेरे के सब बन्धनों को काटकर निर्द्वन्द्व, स्वतन्त्र होकर किसी खास को अपना न मानकर और किसी का खास न रहकर सबको अपना बताकर और स्वयं सबका होकर संसार में घूमता है।

सन्यास घर छोड़ने का नाम नहीं है, बल्कि घर में परिवार, धन-दौलत से मोह-ममता, राग-द्वेष को छोड़ने का नाम है। सन्यास-दीक्षा लेने के बाद घर वालों के लिए सन्यासी एक प्रकार से मर ही जाता है। और उसके लिए घर वाले उसी प्रकार एक तरह से मर ही जाते हैं। वैसे एक न एक दिन मरना सभी को है लेकिन सन्यासी मृत्यु से पहले ही अपने आपको मार लेता है। सन्यासी मृत्यु के बहुत निकट पहुंच चुका होता है। मर कर के घर-परिवार संसार को छोड़ना ही पड़ता है। लेकिन सन्यासी जीते जी ही मरने का मजा लूट लेता है। और अन्त में पल्ला झाड़कर इस दुनिया से चलने के लिए हर वक्त तैयार रहता है। सन्यासी के तन पर भगवा कपड़ा हर समय उस आग की उन लपेटों की याद दिलाता है जिस चिता में जलकर अन्त में सबको पांच तत्वों में मिल जाना है। इस प्रकार एक सन्यासी अपने सुख, आराम का त्यागकर अब विश्व कल्याण के लिए सेवाभाव से कर्म करता हुआ जीता है।

यह वैदिक ऋषियों के द्वारा बनाई गई कितनी सुन्दर व्यवस्था थी। एक आश्रम के बाद दूसरे आश्रम में प्रवेश करता हुआ व्यक्ति स्वार्थ और मोह-ममता की राग-द्वेष की एक-एक तह को उतारता जाता था और अन्तिम आश्रम में पहुंचते-पहुंचते उसके ऊपर स्वार्थ, मोह-ममता की एक तह भी बाकी नहीं रह जाती थी। यहां तक कि अब उस सन्यासी को अपने शरीर से भी मोह-आसक्ति नहीं रहती। यही कारण होता था कि सन्यासी भीतर से शुद्ध निस्वार्थ भाव सूर्य के प्रचण्ड प्रकाश की तरह चमकता है। सन्यासाश्रम में जो २५ वर्ष का समय है वह मृत्यु की तैयारी का समय है। हम सब अपनी-अपनी जीवन यात्रा में अनेक बार मरे हैं और अनेकों बार हमने जन्म लिया है। लेकिन जब भी मरे हैं बेहोशी की स्थिति में मरे हैं और इसी प्रकार हमने जब भी जन्म लिया है वह भी होश पूर्वक नहीं लिया। इस प्रकार बेहोशी के कारण न तो हम अपने जन्म की प्रक्रिया को जान पाते हैं और न मृत्यु को को ही जान पाते हैं। इसी कारण हम कभी नहीं समझ पाते कि जीवन शाश्वत है। इस

प्रकार मृत्यु और जन्म बीच में आए हुए पड़ाव से ज्यादा नहीं, जहाँ हम वस्त्र (शरीर) बदल लेते हैं। सन्यासी-योगी साधना के द्वारा इस परम सत्य को भलीभाँति जान लेते हैं कि शरीर तो जड़ है, मुर्दा है, इस जड़ शरीर को 'मैं' मानकर ही जीवात्मा को बार-बार शरीर धारण करना पड़ता है, "मैं शरीर नहीं हूँ; मैं, ब्रह्म का अंश होने के नाते ब्रह्म ही हूँ" ऐसा सन्यासी को ज्ञान होने पर सन्यासी प्राकृत जड़ शरीर से अपना सम्बन्ध तोड़कर ब्रह्म से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। आनन्दस्वरूप उस परमात्मा से सम्बन्ध जुड़ने पर सन्यासी का नाम ब्रह्मानन्द अथवा परमानन्द हो जाता है। इसी प्रकार एक ध्यानयोगी ध्यान समाधि में आत्म-चेतना को शरीर से हटाकर आत्मा में केन्द्रित करता है। जिससे जड़-शरीर का और आत्मा का उसे भेद स्पष्ट हो जाता है। एक समाधिस्थ योगी का शरीर मुर्दे की भाँति हो जाता है। जिस काम को मृत्यु करती है उसी कार्य को योगी ध्यान-समाधि में करता है। एक योगी जीते जी मरने की कला जान जाता है' समाधि को महामृत्यु कहा है, क्योंकि महामृत्यु के समान योगी का स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीरों से सम्बन्ध टूट जाता है, ऐसी स्थिति में फिर आत्मा-परमात्मा में समाहित हो जाती है, लीन हो जाती है। एक सन्यासी की यही ब्रह्मलीन अवस्था है। जीवन-यात्रा का इस स्थित में पहुँच कर अन्त हो जाता है। आवागमन का चक्र समाप्त हो जाता है। यहाँ पहुँचकर न तो आगे और कहीं जाना होता है, और न पीछे लौटना होता है। समुद्र में मिलकर जैसे नदी समुद्र रूप होकर अपना अस्तित्व खोकर समुद्र हो जाती है, ऐसे ही जीव अपना जीवन खोकर अपने ब्रह्मस्वरूप को पा लेता है। ब्रह्म हो जाता है।

परमोपयोगी साधन

निम्नलिखित बारह नियमों का पालन करने वाला पुरुष धर्मात्मा बन सकता है—

१. सत्य भाषण।
२. दम—इन्द्रियों को उनके विषयों से रोकना।
३. शम—निरन्तर चित्त में शान्ति रखना।
४. तप—नियमपूर्वक आश्रम-धर्म का पालन करना।
५. शौच—बाहर-भीतर पवित्रता रखना।
६. सन्तोष—प्रारब्धवश जो प्राप्त हो उसी में सन्तुष्ट रहना।
७. लज्जा—अधर्माचरण में संकोच होना।
८. क्षमा—सुख-दुःख को धैर्यपूर्वक सहना।
९. आर्जव—सरल भाव से बर्ताव करना।
१०. ज्ञान—प्रत्येक कार्य को विचारपूर्वक करना।
११. दया—यथाशक्ति दीनों की सेवा करना।
१२. ध्यान—भगवान का भजन, स्मरण, ध्यान और कथा-श्रवण आदि।

× × ×

जो कुछ कार्य किया जाय, उसमें भगवत्सेवा का भाव रखना चाहिये।

शिष्य-हित हेतु सद्गुरु की कार्यशैली

❀ श्रीमति कविता शर्मा

गुरु जीवन में न प्राप्त करने की वस्तु है न खोने की, न अर्जित करने की न खर्च कर देने की। रोज-रोज की व्यापार बुद्धि हमारे ऊपर इतनी अधिक हावी हो चुकी है, हमारी आँखों में इतनी अधिक व्यावसायिकता उतर आई है कि हमने उन्हें भी एक व्यापारिक दृष्टि से देखने के प्रयास किये, लेकिन इसमें जो सहजता है उस पर कोई अन्तर नहीं पड़ता। इन सामान्य चर्म-चक्षुओं से तो हम अपने घर-परिवार और सगे-सम्बन्धियों को ही नहीं पहचान सकते कि हमारे प्रति उनके मन में क्या भावना है, कितना प्रेम है। इसको ही नहीं आँका जा सकता फिर एक विभूति को कैसे समझा जा सकता है।

व्यक्ति इस जगत के छद्म और कपट व्यापार को यदि सही-सही जान ले तो उसका सारा हृदय घुटकर रह जाये। वह जिसे अपनी माँ कहता है, जिसे बहन कहता है या भाई कहकर विभोर हो रहा है वे सभी उससे कितनी अधिक दूरी पर खड़े हैं। व्यक्ति इन सभी रहस्यों को कुछ तो न समझते हुए और कुछ जान-बूझकर अनजान बनते हुए भटककर चला जाता है। अपने सारे अस्तित्व को दो मुट्ठी राख में बदल जाता है और जीवन में जो ऊँचाई प्राप्त कर सकता था, जो अनोखा आनन्द खुद प्राप्त कर सकता था और दूसरों को आनन्दित कर सकता था, वह अस्तित्व वर्षों के पृष्ठ बदलने के साथ गुमनामी में चला जाता है। इस सम्पूर्ण यात्रा में उसके जन्म से लेकर मृत्यु तक और मृत्यु के उपरान्त अनन्त ब्रह्माण्ड में जाकर लाखों करोड़ों आत्माओं के बीच में विलीन अस्तित्व को सद्गुरु अपनी दृष्टि की सीमा में निरन्तर बाँधे रखते हैं। उसके पुनर्जन्म की प्रतीक्षा करते रहते हैं और उचित समय आने पर कभी किसी घटना के माध्यम से, कभी किसी व्यक्ति के माध्यम से, कभी किसी अन्य चैतन्य माध्यम से चेतना देकर जगाने का प्रयास करते हैं। अपने और उसके शाश्वत सम्बन्धों की याद दिलाना चाहते हैं। आघात देते हैं और स्नेह भी देते हैं। लेकिन मनुष्य पुनः एक "मैं" में खोया रहकर उसी स्थान पर चला जाता है जहाँ तक वह पिछले जन्म में गया होता है। जिस शरीर और सौन्दर्य का वह इतना भ्रम पालकर रखे होता है, वह तो मृत्यु के बाद उस मृत पशु से भी गया बीता होता है जिसकी चमड़ी से जूते बन जाते हैं। मनुष्य की तो चमड़ी तक मरने के बाद किसी काम में नहीं आती।

गुरु की तुलना वैद्य से की गई है। सामान्य वैद्य दवा देने के बाद अपनी फीस लेकर अलग हो जाते हैं। मध्यम श्रेणी के वैद्य दवा देने के बाद भी यदा-कदा मिलने पर हालचाल पूछ लेते हैं। लेकिन उत्तम वैद्य रोगी के सीने पर चढ़कर उसको कड़वी दवा पिलाने और स्वस्थ किये बिना मानता ही नहीं। ठीक इसी प्रकार सामान्य गुरु जिनकी आजकल बहुतायत दिखती है वे कान में मन्त्र

फूँक कर देने के बाद दक्षिणा लेकर अलग हो जाते हैं। मध्यम श्रेणी के गुरु कभी-कभी शिष्य का हालचाल भी पूछ लेते हैं। लेकिन सद्गुरु अपने शिष्य के सीने पर चढ़कर उसे कड़वी दवा पिलाये बिना, उसे मुक्त किये बिना विश्राम लेते ही नहीं। जाहिर है ऐसा करने में शिष्य के अहम् को भी चोट पहुँचेगी, उसे कष्ट और वेदना भी होगी लेकिन सद्गुरु जानते हैं कि यदि मेरे इस शिष्य ने अपने को छलावे में रखा और मैंने भी इसे आघात नहीं दिया तो इसका जन्म व्यर्थ ही चला जायेगा।

शिष्य को भी इस आपाधापी से भरे जीवन में एक क्षण रुकना ही होगा। सद्गुरु की उँगली पकड़कर उस मार्ग पर चलना होगा जहाँ अपनी आत्मा को चैतन्यता मिल सके, शीतलता मिल सके और सुखद छाँव भी मिल सके। ऊँचे पर्वतों की यात्रा करने पर प्रारम्भ में रंग-बिरंगे फूलों की घाटियाँ मिलती हैं, लेकिन ऊँचाई पर जाकर अकेले देवदार ही मिलते हैं। घाटियों के फूलों के रंग लुभावने होते हैं लेकिन उनमें छाँव नहीं होती। छाँव उसी देवदार के नीचे मिलती है जो आठ हजार फीट से नीचे उगता ही नहीं। तभी उसे देवताओं का वृक्ष कहा गया है और ऊँचाई पर जाकर ही देवत्व के दर्शन व प्राप्ति सम्भव होती है।

इसमें कर्त्तव्यों की उपेक्षा नहीं है और मार्ग में घर परिवार से अलग हटकर एकान्त में धुनी भी नहीं रमानी है। वह तो एक-दूसरे किस्म का छलावा हो जायेगा, लेकिन सहारा लेना है जिससे अपनी अन्तश्चेतना को भी पूर्णता मिल सके। यह जीवन, अगला जीवन और उससे भी अगला जीवन निरन्तर एक अन्तश्चेतना की ही यात्रा है। ऐसी अन्तश्चेतना जो शुद्ध व निर्मल होकर ईश्वर से मिलने को आतुर है और इसीको कहीं "आत्मा" कहा गया है और कहीं "जीव" तो कहीं "प्राण"। लेकिन मूलरूप में वह एक अभिव्यक्ति ही है उसी विराट तेजपुञ्ज की, जिसका बोध होता है 'गुरुदीक्षा' के माध्यम से। और व्यक्ति अब शनैः-शनैः अपने अन्दर जागृत होते गुरुत्व का साक्षात् करता है। पूर्ण गुरुत्व से साक्षात्कार कर उससे एकाकारिता प्राप्त कर सुख व सन्तोष का लाभ प्राप्त करने लगता है और तब उसके सामने जीवन की घटनायें चलचित्र की तरह घटने वाली मात्र हो जाती है जिन्हें वह एक ओर खड़े-खड़े देखता रहता है फिर व्यक्ति स्वयं कर्ता भी बन जाता है। अर्थात् ऐसी क्षमता प्राप्त कर लेता है कि जीवन की स्थितियाँ उसकी इच्छानुसार ही बनें और बिगड़ें। और वही वास्तविक अकर्ता व उदासीन भी हो जाता है क्योंकि कर्ता बनते ही, शक्तिमय होते ही उसमें यह समझ भी आ जाती है कि इस नित्य जगत के कार्यों और दैनिक प्रपञ्चों से अलग हटकर वास्तविक शान्ति तो कहीं और है। इसीसे गुरु मार्ग व गुरु धर्म न तो संसार से अलग करता है न संसार से लिप्त करता है। बस व्यक्ति को आत्मबोध करा देता है। जिस "मज्झिम्म पतिपदा" अर्थात् मध्यम मार्ग का संकेत भगवान बुद्ध ने किया था, गुरु मार्ग इसी मार्ग पर चलने का व्यावहारिक और साधनात्मक मार्ग प्रस्तुत करता है।

★

साधना का केन्द्र शरीर नहीं, आत्मा है !

☐ उपाध्याय श्री अमरमुनि जी

जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ अपना सब कुछ होम कर देने वाले महान् साधकों को भी होती हैं। भूख होती है, प्यास होती है। इन्हें कब तक दबाया जा सकता है? अन्न और जल मानव-जीवन की आधार शिला है, उनकी प्राप्ति के लिए यथावसर उचित प्रयत्न करना ही होता है। इस सम्बन्ध में 'नहीं' का कुछ अर्थ नहीं है। साधना का अर्थ जीवन को नकारना, मरण को स्वीकारना नहीं है। साधना का अर्थ है जीवन और मरण दोनों को सँवारना, सुधारना और ज्योतिर्मय बनाना। यह ठीक है कि 'स्व' के प्रति समर्पित आत्मा शरीर के प्रति उपेक्षित हो जाती है, पर इसका यह अभिप्राय तो नहीं कि दण्ड देना है, जान-बूझकर व्यर्थ ही उसे तोड़ना है, मिटाना है। साधना का ध्येय शरीर को मिटाना नहीं है, अपितु उसे नियन्त्रित करना है। शरीर साधना का शत्रु नहीं है, जो उसे मारा जाए। शरीर तो साधना का सहयोगी है, सहायक है। उसके साथ यह विवेकहीन उत्पीड़न का व्यवहार साधना नहीं, साधना की विडम्बना है। साधना का केन्द्र शरीर नहीं, आत्मा है। शरीर को साधो, आत्मा को निर्मल बनाओ, बस साधना हो गई।

यह ठीक है कि साधक शरीर का गुलाम नहीं होता, जो दिन-रात उसी की सुख-सुविधा में बेभान बना रहे, अन्य किसी महत्वपूर्ण काम का न रहे। जब देखो तब शरीर की चिन्ता, शरीर की सुख-सुविधाओं की उधेड़बुन। यह वृत्ति साधना के तेज को गला देती है। अतः साधक शरीर को साधता है, साधना के लिए उसे सक्षम बनाता है। सक्षमता यही कि यदि कभी मर्यादा के अनुकूल समय पर कुछ न मिले, तो शान के साथ भूखा रह सके, प्यासा रह सके। यह नहीं कि इधर भूख लगी और उधर साधक जी फूल से मुरझा गये। इधर प्यास लगी कि उधर 'हाय मरा' का शोर मचाने लगे। साधना के पथ पर ऐसा नहीं होना चाहिए। संकट की घड़ियों में भी अनाकुलता बनाये रखना, विचलित न होना साधना का उद्देश्य है।

सत्पुरुषों का सत्संग

☐ श्री विष्णुप्रसाद व्यास (बीना)

इस संसार को सन्तों ने स्वार्थमयी, नश्वर और स्वप्न सदृश असत् वाला बताया है और ईश्वर के ध्यान, जप व सत्पुरुषों की संगति को सत्रूप दर्शाया है। लेकिन सन्त एवम् सत्पुरुषों का संग भी जीव को पूर्व संचित शुभ कर्मों के फलस्वरूप ही प्राप्त हो सकता है। इनकी संगति में जाने से ही जीव के सभी संशय और भ्रम नष्ट हो जाते हैं। स्थायी सुख, शान्ति की खान जो भक्ति है उसको प्राप्त करके जीव अपने मन को अपने को दिव्य रङ्ग में रङ्ग लेता है, यही सत्य वस्तु है।

विपरीत इसके शरीर नाशवान है, इन्द्रियों के सुख अस्थिर हैं, रिश्तेदारों व सम्बन्धियों का स्नेह भी मतलब का है तथा माया छाया की तरह है। माया ने आज तक किसी के साथ वफादारी नहीं की।

लेकिन, यह सत् और असत् का निर्णय कैसे होगा? क्या मनुष्य अपनी बुद्धि से सत्-असत् के भेद को जान सकता है? नहीं, ऐसा जान सकना मानव बुद्धि से परे की बात है। सन्त सत्पुरुषों की संगति से ही ऐसा निर्णय हो सकेगा कि सत् वस्तु क्या है और असत् क्या है? कौन-सी चीज आत्मा से सम्बन्ध रखती है, किस पदार्थ से प्यार करना लाभदायक है और कौन-सी चीज हानिकारक है, जिससे इस जीव को अपने बन्धन छुड़ाने हैं। इन सब बातों को जानने के लिए सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि मनुष्य सबसे पहले सत्संग में जाय, जहाँ कि सत्-असत् का निर्णय किया जाता है। क्योंकि सत्संग नाम ही उसका है जिससे सत्-असत् का भेद बतलाया जाय—दूसरे शब्दों में दूध और पानी को अलग-अलग करके दिखा दिया जाय। इसलिये सब शास्त्रों में सत्संग की महिमा को और उच्चतम कहा गया है। भगवान श्री रामचन्द्र जी जब शबरी के आश्रम पर गये थे उस समय उन्होंने शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश देते हुए सबसे प्रथम भक्ति सन्तों का सत्संग ही बताया था—

'प्रथम भक्ति सन्तन कर संगा'

वास्तव में यही सुदृढ़ नींव है जिस पर जीव भक्ति का भव्य-भवन निर्मित कर सकता है एवम् जिज्ञासु शनैः-शनैः अपने लक्ष्य की ओर बढ़ सकता है। उदाहरणतया यदि कोई भी बालक विद्या पढ़ने के लिये स्कूल में प्रविष्ट होता है तो शिक्षक उसे सर्वप्रथम "अ आ" वर्ण से ही विद्या सिखाना आरम्भ करता है। ठीक इसी प्रकार ही परमार्थ व भक्ति मार्ग में भी सन्तों का संग "अ आ" अक्षर के समान भक्ति-पथ का प्रथम सोपान है। आप यदि किसी भी ग्रन्थ-शास्त्र को पढ़ें,

किसी भी सन्त महात्मा की वाणी पर विचार करें तो उसमें सर्वप्रथम सत्संग को अपनाने की अत्यधिक प्रेरणा दी गई होगी। सत्संग में आने से जीव का मन सत् की ओर प्रेरित होने लगता है और मनुष्य के मन का कोठा बदलकर भक्ति और परमार्थ की ओर लगने लगता है। सत्संग की जितनी महिमा लिखी जाय उतनी थोड़ी है। सत्पुरुष का एक घड़ी का सत्संग ही मानव की जीवन धारा को बदलकर कुछ का कुछ बना देता है। प्रस्तुत दृष्टांत में एक ग्वालिन बालिका ने एक घड़ी के सत्संग के सुनने और उस पर आचरण करने से किस प्रकार अपने जीवन को सुधार लिया, वह प्रसंग यहां पढ़िये—

किसी नगर में "मायादास" नाम का एक व्यक्ति रहता था। उसके पास बहुत-सी गाय, भैंसें थीं। वह दूध बेचकर अपना और अपने परिवार का जीवन-निर्वाह करता था। उसकी दो लड़कियाँ थीं। बड़ी लड़की विवाहित थी और छोटी लड़की जिसकी आयु अभी चौदह वर्ष की थी, उसका नाम "सौभाग्यवती" था। वह अपने पिता की आज्ञानुसार चलकर दूध बेचा करती थी। उसके पिता का यह आदेश था कि जब सुबह शाम दूध दोहने का समय आये तो दूध दोहने वाले बर्तनों को साफ करके उसमें पानी डाल दिया करे जिससे दूध दोहते समय पानी दूध के साथ मिल जाय और ग्राहकों को दूध में पानी डालने का आभास तक न होने पाये। इस साधन से मायादास कपट करके धन अर्जित किया करता था।

इसी नगर में उच्चकोटि के एक महात्मा जी भी रहते थे। वह प्रतिदिन सायंकाल को शुद्ध व्यवहार तथा भक्ति ज्ञान के विषय में उपदेश किया करते थे। इन प्रेम भरे वचनों को श्रवण करने के लिये काफी संख्या में लोग आया करते थे। इसीसे सारे नगर में इनकी महिमा फैली हुई थी। इनकी प्रसिद्धि के विषय में मायादास ने भी सुन रखा था। अतएव वह मन ही मन महात्मा जी के प्रति घृणा के भाव संजोये रखता था। इसने अपनी छोटी लड़की सौभाग्यवती से कह रखा था कि "बेटी! तू नगर के तीन कोनों में जाकर दूध बेचा करना परन्तु चौथे कौने की ओर कभी न जाना, क्योंकि वहाँ एक घर उजाड़ने वाले महात्मा जी रहते हैं।"

सौभाग्यवती पहले तो पिता के डर से कई दिनों तक उधर दूध बेचने नहीं गयी परन्तु एक दिन उसके मन में विचार आया कि आज चौथे कौने की ओर जाकर देखें तो सही कि कौन से घर उजाड़ने वाले महात्मा जी रहते हैं। ऐसा विचार आते ही वह लड़की उस ओर गयी। वहाँ पहुँचने पर देखती क्या है कि एक वृद्ध महात्मा जी उच्चासन पर विराजमान हैं और उनके आगे चार-पाँच सौ स्त्री-पुरुष प्रेम से बैठे व्याख्यान सुन रहे हैं। यह देखकर सौभाग्यवती भी थोड़ी देर के लिये वहाँ बैठ गई। इस समय महात्मा जी "सदाचार" के विषय पर उपदेश कर रहे थे कि "सच्चाई के व्यवहार से जीव उत्तम गति को प्राप्त करता है तथा असत्य व्यवहार से दुःख, क्लेश पाकर नीच योनियों का शिकार बनता है। अपने किये हुए कर्मों से मनुष्य कदापि बच नहीं सकता।" महात्मा जी के वचन बड़े मनोहर थे, अतः कन्या के दिल पर गहरे उतर गये। वह काफी देर तक वहाँ बैठी रही। सत्संग की समाप्ति पर महात्मा जी के निकट जाकर सादर नमस्कार कर पूछा—"महाराज! सच्ची व झूठी रहनी का क्या स्वरूप है?"

महात्मा जी ने कहा—"बेटी ! सच दूध और झूठ पानी है। जो केवल दूध का विक्रय करे उसकी सच्ची रहनी है और जो दूध में पानी मिलाकर बेचे उसकी झूठी रहनी है।"

"विश्व में सत् और असत् दोनों प्रकार के पदार्थ विद्यमान हैं। जो जिज्ञासु भक्ति-परमार्थ के मर्म को जानते हैं, विचारवान और विवेकशील हैं और जिन्हें सन्त सद्गुरु की संगति में रहने से वास्तविकता का बोध हो गया है ऐसे सज्जन सदैव नित्य और सत्य वस्तु से प्रेम करते हैं, वही सदा स्थिर और ध्रुव है। बुद्धिमान और विचारशील पुरुष कभी भूलकर भी विनश्वर जगत के अस्थायी रसों की इच्छा नहीं करते, अपितु वे इस संसार के झूठे पदार्थों का प्यार छोड़कर प्रभु की भक्ति में ही अपने ध्यान को लगाये रहते हैं जो कि नित्य सनातन और दोनों लोकों में कल्याण करने वाली है।"

महात्मा जी के इन वचनों से सौभाग्यवती के सुषुप्त कर्म जाग उठे जिससे वह पूर्व कर्म किये हुए अपने कुकृत्यों पर पश्चाताप करने लगी और दिल में प्रतिज्ञा की कि आज से मैं पिताजी को बर्तन में पानी डालकर कभी न दूँगी।

दूसरे दिन जब मायादास दूध दोहने लगा तब सौभाग्यवती बर्तन साफ करके ले आयी परन्तु आज उसने पहले की भाँति बर्तनों में पानी नहीं डाला। दूध दोहते समय कुछ ग्राहक भी निकट ही खड़े थे। पिता ने खाली बर्तन देखकर लड़की को इशारे से कहा—बर्तन अच्छी तरह साफ करके लाओ। कन्या ने बर्तन धोकर पुनः खाली ही पिता के हाथ में थमा दिया।

पिता ने दूसरी बार पुनः कहा, परन्तु सौभाग्यवती ने इस बार भी खाली बर्तन पिता के हाथों में दिया जिससे मायादास मन ही मन झल्ला उठा और कहने लगा—"मुझे ऐसा लगता है जैसे आज तू "घर उजाड़ने वाले महात्मा" की तरफ गई हो और वहाँ से ही उल्टी पढ़ाई पढ़ आई हो।" लोगों के चले जाने पर मायादास सौभाग्यवती पर बड़ा नाराज हुआ। तब उसने कहा—"पिताजी ! अब मैं बर्तन में पानी डालकर कभी न दूँगी क्योंकि महात्मा जी ने इस कार्य का कुपरिणाम बताया है।"

मायादास ने क्रोध में भरकर कहा—"मैं तो पहले ही समझ गया था कि आज तुझ पर उस महात्मा का रंग चढ़ गया है। लेकिन—"बेटी ! अभी तू अविवाहित है, तेरा सारा दुःख-सुख, भला-बुरा, मुझ पर ही निर्भर है, तेरी बड़ी बहिन यद्यपि विवाहिता है तब भी वह मेरी आज्ञा में चलती है। फिर तेरा भविष्य तो मेरे हाथ में है इतने पर भी तू मेरा कहना मानने में असावधानी करती है—यह तेरे लिये उचित नहीं।"

प्रत्युत्तर में कन्या बोली—"पिताजी ! उचित अथवा अनुचित मैं अपने हाथों से जान-बूझकर खोट-कपट नहीं करना चाहती। जब तक मुझे ज्ञान नहीं था तब तक मैं गलत काम करती रही, अब मुझे सत्संग द्वारा इस बात का अनुभव हो गया है। इसलिये अब मैं ऐसा करना पाप समझती हूँ।" जैसे कहा है—

॥ दोहा ॥

अन्ध गिरे जो कूप में, ताका दोष न होय।
नेत्रवान जो गिर पड़े, उसकी चर्चा होय ॥

यह सुन पिता ने आवेश में भरकर कहा—"अभागिन! देख लेना, मैं तेरी शादी एक ऐसे पुरुष के साथ करूँगा जो लूला, लंगड़ा, बदसूरत और कोढ़ी हो, फिर तुझे पता लगेगा कि घर उजाड़ने वाले महात्मा की संगत का क्या फल मिलता है। तू ऐसा दुःख पावेगी कि आयु पर्यन्त रक्ताश्रु प्रवाहित करती रहेगी और फिर इस घड़ी का तू पश्चाताप करेगी—इन महात्माओं की शिक्षा से तू दिन-रात दुःखी होकर रोयेगी। अब भी समय है मेरा कहना मान जा और उपदेश का त्याग करदे, फिर भूलकर भी उनका सुमिरण न करना।"

कन्या ने दृढ़ता से उत्तर दिया—"पिताजी! मेरा प्रारब्ध मेरे साथ है, कर्म रेखा प्रबल है। यदि मेरे भाग्य में लूला, लंगड़ा पति लिखा है तो मैं उसको ही भगवान की अति कृपा ही समझूँगी। मैं इस बात से क्यों मुख मोड़ूँ? मुझे कोई भय नहीं है क्योंकि मेरा मार्ग सत्यता से पूर्ण व बिल्कुल साफ है।

॥ शेयर ॥

कुछ परवाह नहीं, अगरचे जमाना खिलाफ है।
रास्ता वही चलेंगे, जो ठीक और साफ है ॥

पिताजी! मेरी प्रारब्ध में जो बननी थी वह तो बन चुकी है। हाँ, अब तो मात्र समय की ही प्रतीक्षा है। जैसे गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है—

॥ दोहा ॥

पहले बनी प्रारब्ध, पाछे बना शरीर।
तुलसी यह आश्चर्य है, मन नहीं बाँधे धीर ॥

भगवान की लीला विचित्र है। जिस समय पिता और पुत्री में यह वार्ता हो रही थी उस समय "प्रीतम नगर" का राजा "लीलाधर" भेष बदलकर नगर का परिभ्रमण कर रहा था। चलते-चलते इन पिता पुत्री में हो रही बातें उसके (राजा) कान में पड़ गई। जिससे वह कुछ देर के लिये वहाँ रुक गया और छिपकर सारी वार्ता सुन अपने महल में लौट आया। उस लड़की के सद्गुण, सच्चाई, भक्ति-भाव के शुभ विचारों से वह प्रभावित हुआ और निश्चय किया कि क्यों न ऐसी सुशील लड़की के साथ विवाह किया जाय।

दूसरे दिन प्रातः होते ही मायादास क्रोधावस्था में सौभाग्यवती के लिए लूला-लंगड़ा पति ढूंढने के लिये संकल्प कर ही रहा था कि उधर महाराज लीलाधर ने अपने मन्त्री के हाथ मायादास को बुलाने का सन्देश भेजा। राजा साहब के आदेशानुसार मन्त्री मायादास के घर पहुँचा और सन्देश दिया कि कन्या को साथ लेकर मायादास राजदरबार में पहुँचे। यह सुनते ही मायादास अवाक्-सा रह गया और स्वप्न-सी उसकी अवस्था हो गयी। उसे अपने पर विश्वास ही न हो रहा था कि यह सब सत्य है या असत्य। उसकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। उसके सारे कुविचार धूल में मिल गये। विवश हो राजा की आज्ञा मान अपनी कन्या सौभाग्यवती को लेकर राजदरबार में जा पहुँचा।

तब राजा साहब ने मायादास से कहा—"मैं चाहता हूँ इस कन्या का विवाह मेरे साथ हो जाय।" शास्त्र विधि के अनुसार सौभाग्यवती का विवाह महाराज लीलाधर के साथ किया गया और सौभाग्यवती ग्वालिन अब "महारानी" बन गई। मायादास कन्या के सौभाग्य को देखकर चकित रह गया। इसने समझ लिया कि यह सब महात्मा जी की दयालुता व क्षणिक सत्संग का ही प्रभाव है। मायादास के दिल में महात्मा जी के प्रति जो घृणा थी वह अब श्रद्धा में परिवर्तित हो गई। उसने महात्माजी के पास जाकर अपनी भूलों की क्षमा-याचना की तथा उनका सेवक बन गया एवम् अपने कुव्यवहार को शुद्ध व पवित्र कर लिया अर्थात् उसने दूध में पानी मिलाना बन्द कर दिया।

इधर सौभाग्यवती के सद्व्यवहार से महाराज लीलाधर बहुत ही प्रसन्न थे। एक दिन उन्होंने महारानी सौभाग्यवती से पूछा कि—"आपकी कोई हार्दिक इच्छा हो तो प्रकट करो मैं उसे पूरा करने को तत्पर हूँ।" इस पर सौभाग्यवती ने प्रेम व नम्रता से उत्तर दिया—"महाराज! आपकी कृपा से वैसे तो आनन्द ही आनन्द है। मेरी केवल एक ही इच्छा है, वह यह कि इस नगर में अमुक महात्माजी रहते हैं। मैंने अपने हृदय में उन्हें गुरु-रूप में धारण कर लिया है। उनकी अपार कृपा व एक दिन के क्षणिक सत्संग से मेरे बुरे कर्मों की रेखा परिवर्तित होकर शुभ हो गई है। उनके उपदेश के श्रवण व मनन से ही मैं इस पद की अधिकारिणी बन पाई हूँ। सो मेरी हार्दिक इच्छा यह है कि आप उन्हें सादर महल में ले आइये। प्रथम तो विधि अनुसार उनसे नाम की दीक्षा ली जाय तथा उनके निवास के लिए अलग स्थान बनवा दिया जाय ताकि नित्य सत्संग-प्रचार हो सके जिससे हमें व प्रजा को आत्मिक लाभ हो।"

महाराजा लीलाधर से पूर्व ही आस्तिक विचारों के थे, अब महारानी की संगति से उनके शुभ विचारों में बढ़ोतरी हो गई। रानी के कथनानुसार दूसरे दिन बड़ी श्रद्धा व आदर के साथ महाराज लीलाधर महात्मा जी को महल में लिवा लाये और उनसे विधि पूर्वक गुरुदीक्षा लेकर दोनों उनके शिष्य बन गये। अब तो वहां प्रातः-सायं सत्संग का प्रवाह चलने लगा जिससे थोड़े समय में ही नगर निवासी सत्संगी बन गये। सब लोग महारानी के उपकार और महात्मा जी की अनुकम्पा व सत्संग द्वारा अपने जीवन को सफल सिद्ध करने लगे। महारानी सौभाग्यवती की खुशी का कोई ठिकाना न रहा।

सत्पुरुषों के विमल सत्संग को पाकर जीव अपनी काकवृत्ति को छोड़ हंसवृत्ति ग्रहण कर लेता है। इतना ही नहीं दिन-रात उसका मन जो मलिन वासनाओं व सांसारिक सुख-वैभव के रसों में फँसा होता है, सन्तों की संगति प्राप्त होने से सब उसे झूठे भासने लगते हैं तथा वह सत्पथ की ओर अग्रसर हो जाता है। जिस प्रकार इस दृष्टान्त में एक घड़ी के सत्संग के प्रभाव से सौभाग्यवती ने स्वयं को ही नहीं अपितु अपने साथ अपने पिता को भी बुराइयों की ओर जाने से बचा लिया। वस्तुतः यह सत्संग ही इस मार्ग की प्रथम सीढ़ी है। जिस मनुष्य के पूर्व जन्म के अच्छे संस्कार होते हैं उन प्रबुद्ध आत्माओं को सत्संग के प्रभाव से यह विदित हो जाता है कि अब पूर्ण सद्गुरु की खोज करनी चाहिये। ऐसा विचार होने पर वे संस्कारी आत्मायें जब अपना पग इस महान कार्य की

और बढ़ाती है तब कुदरत भी उनकी सहायता के लिये उपस्थित हो जाती है। सद्गुरु की प्राप्ति होना बड़े भाग्यों की निशानी है। क्योंकि आत्मोन्नति के लिये साधक पूर्ण सन्त सद्गुरु की छत्रछाया में रहकर ही अपना जीवन सुगमतापूर्वक व्यतीत कर सुख स्वरूप बन सकता है। इस मार्ग में तो पग-पग पर सद्गुरु की आवश्यकता होती है। फिर उनकी कृपा हो जाने पर काम, क्रोध आदि और मन व माया जीव पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। इसलिये प्रयत्न करके समय से सन्त सद्गुरु की प्राप्ति कर व उनसे नाम-उपदेश लेकर तथा उस पर आचरण करके अपने जीवन को ज्वलन्तमय बना लेना चाहिये।

उत्तम सेवा

माता, पिता, आचार्य आदि गुरुजनों की सेवा

माता, पिता, आचार्य की सेवा और आज्ञापालन के समान पुरुषों के लिये दूसरा कोई भी धर्म नहीं है। मनु ने भी कहा है—इन सब की सेवा ही परम धर्म है शेष सब उपधर्म है—

त्रिष्वेतेष्वितिकृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते।
एष धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते॥ (चाणक्य० २/२३७)

'इन तीनों की सेवा से ही पुरुष का सब कृत्य समाप्त हो जाता है यानी उसे कुछ भी करना शेष नहीं रहता। यही साक्षात् परम धर्म है, इसके अतिरिक्त अन्य सब उपधर्म कहे जाते हैं।'

बात यह है शास्त्रों में माता, पिता, आचार्य को तीनों लोक, तीनों वेद और देवता बतलाये हैं। श्रुति कहती है—

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।

'माता, पिता, और आचार्य को देवता मानने वाला हो। मनु ने कहा है—

त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः।
त एव हि त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोऽग्नयः॥ (चाणक्य० २/२३०)

'वे ही तीनों लोक, वे ही तीनों आश्रम, वे ही तीनों वेद और वे ही तीनों अग्नि कहे गये हैं।

★ मन की प्रसन्नता ★

❀ स्वामी रामतीर्थ

चिरस्थायी प्रसन्नता किस प्रकार मिल सकती है ? "प्रसन्न रहो, शान्त रहो" यह कहना सरल है किन्तु हर हालत में प्रसन्न और शान्त रहना कितना कठिन है। केवल नियम बनाकर प्रसन्नता नहीं मिलने की, कोरे नियमों से काम नहीं चलने का ! तो फिर हमें प्रसन्नता क्यों कर मिल सकती है ? बताइये तो सही कि कौन-सी ऐसी बात है जो हमारी वृत्तियों को खींचे हुए है। वेदान्त बतलाता है कि हम उदासीन और अप्रसन्न उस समय होते हैं जब हम शरीर को सब कुछ समझने लगते हैं और इच्छाओं के वशीभूत होते हैं। उसी समय हमारा मन डांवाडोल होने लगता है। मरोड़ उत्पन्न होने से हमें मेदे का ज्ञान होता है, सरदी होने से नाक का ज्ञान होता है, दर्द होने से भुजाओं का ज्ञान होता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक ज्ञान का ह्रास होने से इस शरीर का नाश होता है। शरीर की खबरदारी करने और चिन्ताओं में डूबे रहने के कारण आध्यात्मिक बीमारी पैदा होती है, शारीरिक निर्बलता के कारण स्वर्ग से गिरना पड़ता है, भेद-भाव का ज्ञान होते ही हम स्वर्ग से फेंक दिये जाते हैं किन्तु हाड़-मांस के शरीर को शूली पर चढ़ाकर हम स्वर्ग को फिर प्राप्त कर सकते हैं। शरीर और कुत्सित तुच्छ निःसार वस्तुओं की कुछ परवाह न करने ही से हमारी बुद्धि सम हो सकती है और बुद्धि के शम होने से हमें मन की प्रसन्नता मिल सकती है।

मन की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये वेदान्त की यह शिक्षा कार्यरूप में परिणत करके दिखलानी होगी कि हमारी आत्मा ही एक सारभूत पदार्थ है। आत्मा का सच्चा ज्ञान जब इस प्रकार हो जायगा तो संसारकी सब व्यवस्थायें आपके अनुकूल हो जायेंगी।

भाइयो, हमसे और इस शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं है। ये शरीर के अङ्ग और बाहरी रिश्तेदारियां केवल खिलौना और थियेटर के खेल हैं। [प्रायः हम कहा करते हैं कि अमुक मनुष्य मित्र है किन्तु वास्तव में न तो मेरा कोई शत्रु है और न मित्र।] मैं तो साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हूँ। मुझ से और सांसारिक झगड़ों से कोई सम्बन्ध नहीं है। सब रिश्तेदारियां केवल दिखावटी हैं। प्रत्येक खिलाड़ी का कर्त्तव्य है कि नाटक में वह वह अपना खेल (Part) निरासक्ति के साथ भलीभांति करे। जो नाट्य सम्बन्धी प्रेम और घृणा की बातों को हृदयङ्गम कर लेता है वह मूर्ख है। जब संसार नाट्यशाला है तो दिखावटी कर्त्तव्यों की परवाह क्यों करते हो। यदि कोई राजा है तो उससे डाह क्यों करते हो और यदि कोई दरिद्र है तो उससे घृणा क्यों करते हो ?

स्थिति पर किसी का मान,
और अपमान निर्भर है नहीं।
कर्त्तव्य पालन कीजिये,
फिर नाम होगा आप ही॥

वेदान्त बतलाता है कि हमें अपनी वर्तमान अवस्था की कुछ चिन्ता ही नहीं करनी चाहिये। केवल मूल सिद्धान्त को समझकर भय को दिल से निकाल देना चाहिये। न्यायाधीश का उदाहरण लीजिये। न्यायाधीश आकर अपने स्थान पर डट जाता है। पेशकार, क्लर्क, वकील और नौकर उसकी प्रतीक्षा करते रहते हैं। उसे गवाहों, वकीलों और वादी-प्रतिवादियों को बुलाने नहीं जाना पड़ता। उसे कमरा, मेज और कुर्सी नहीं झाड़ने पड़ते। उसके केवल रोब ही से सब बातें दुरुस्त हो जाती हैं। सूर्य भगवान के निकलते ही नदी, पौधे, पशु-पक्षी यहाँ तक कि सारी प्रकृति देवी भी सचेत हो जाती है। उसी प्रकार जब आप सत्य का अवलम्बन लेंगे, जब आप निःस्वार्थ जज के स्थान पर बैठेंगे तभी आपकी महान आत्मा से कान्ति निकलेगी और सब बाह्य पदार्थ उसे देखकर आप से आप आपके पास दौड़े आवेंगे। भारतवर्ष के सबसे बड़े योद्धा महाराज रामचन्द्र के विषय में यह लोकोक्ति है कि जब वे सीताजी को लाने के लिये लंकापुरी को रवाना हुए तो प्रकृति देवी रामचन्द्र जी की सहायता करने के लिये उद्यत हुई। बन्दर, हंस, गिलहरी, पत्थर, हवा, पानी लिस्ट में अपना नाम लिखवाने के लिए एक-दूसरे की स्पर्धा करने लगे। अपनी आत्मा में मस्त रहो और पतित करने वाले प्रलोभनों और वैमनस्य को छोड़ दो। क्या बात है कि फिर देवता आपकी सेवा न करने लगें। छोटे बच्चे को सब लोग क्यों प्यार करते हैं? वह पहलवान से पहलवान के कन्धे पर क्यों चढ़ जाता है और बड़े से बड़े आदमी के बालों को पकड़कर क्यों खसोट लेता है? क्या बात है वे बुरा नहीं मानते। कारण यही है कि बच्चे को बाह्य बातों का ध्यान नहीं रहता, वह सदैव अचेतन रूप से ब्रह्म में लीन रहता है।

यदि आप सच्चाई के साथ काम करते हुए अपने कर्त्तव्य का पालन किये जाइये तो आपको बाहरी सहायता प्राप्त करने के लिये कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा। यदि वक्ता का व्याख्यान अच्छा है तो उसकी अच्छी-अच्छी बातों को लोग स्वयं आकर नोट कर लेंगे, उन्हें बुलाने की आवश्यकता न पड़ेगी। न्यायाधीश की तरह जमकर बैठ जाइये। अपनी आत्मा पर विश्वास रखिए। दूसरे से किसी बात की इच्छा करके वृथा ही शंकाओं से अपने हृदय को भर कर मन की प्रसन्नता नष्ट मत कीजिये।

शरीर के किसी अङ्ग में जब खुजलाहट उत्पन्न होती है तो खुजलाने के लिये हाथ आप से आप वहाँ पहुँच जाता है। जीवात्मा की जो शक्ति हाथ में है, वही शक्ति खुजलाहट के स्थान पर है। जैसी आत्मा आप में है वैसी ही आपके पड़ोसियों में भी है। जब जब आपने सर्वगुण सम्पन्न परमात्मा पर ध्यान लगाकर सारे संसार को अपना शरीर बना लिया तो खुजलाहट की जगह पर हाथ की तरह बाहरी सहायता अपने पास स्वयं पहुँचती रहेगी।

जब हम अपनी परछाईं पकड़ने के लिये उसके पीछे दौड़ते हैं तो वह हमसे आगे भागती जाती है। हम उसे नहीं पकड़ सकते। किन्तु यदि हम उसकी ओर से चित्त हटाकर

सूर्य की ओर मुँह करके दौड़ें तो वह आपके पीछे लग जायगी। उसी प्रकार जब आप बाह्य पदार्थों के लिये हाथ फैलायेंगे तो वे आपके सामने से भाग निकलेंगे और जिस समय आप उनकी ओर से मुँह फेर कर जाज्वल्यमान अपनी आत्मा पर ध्यान लगायेंगे तो वे आपके पीछे-पीछे दौड़ेंगे।

बहुत से लोग "कर्तव्य" शब्द का नाम सुनकर डर जाते हैं और मारे डर के उनके हाथ-पैर ढीले पड़ जाते हैं। ड्यूटी (कर्तव्य) जूजू की तरह उन पर सवार रहती और परेशान करती है! उनका शरीर सदा अशांत बना रहता है। कर्तव्य के पीछे मशीन की तरह काम करने वाले ये गुलाम जितनी ही जल्दी करते हैं उतनी ही अपनी शक्ति को नष्ट करते हैं। (कहा मानो और) ऐसा अभ्यास डालो कि ड्यूटी (कर्तव्य) के कारण न तो आपकी बुद्धि चञ्चल होने पावे और न उत्साह ही भंग हो। कर्तव्य को तो आपने ही मे निश्चय किया है, क्योंकि आप अपने आपके स्वामी हो। काम करने के लिये अपने अफसर आपने स्वयं बनाये और वर्तमान पद आप ही ने स्वयं स्वीकार किया। यदि आपको रुपये की आवश्यकता है तो आपके अफसरों को काम की आवश्यकता है। बराबरी का हिसाब है। आप अपनी इच्छा के अनुसार काम करते हो, किसी दूसरे की इच्छा के अनुसार नहीं करते। अपनी वर्तमान स्थिति आपने स्वयं बनाई है और भविष्य भी आप ही स्वयं बनावेंगे। अपने भले-बुरे के कर्ता आप ही हो, इसलिये प्रसन्न चित्त रहो।

होतव्यता हम निज बनाते हैं विचारों से सदा।
जानते पर कुछ नहीं अच्छा-बुरा है क्या बदा॥
छाया विचारों की लखो कहते जिसे प्रारब्ध हैं।
कामना जैसी जिसे जिसको वही उपलब्ध है॥
सब विचारों के प्रभु हैं मन यदपि वह भिन्न है।
शांति दृढ़ गम्भीर होना ही विजय का चिह्न है॥
छोड़कर भय को किसी प्रभु से हमको भय नहीं।
त्याग दें यदि मोह-माया तो हमें जय सब कहीं॥
आपत्ति जब आ घेरती है ईश कहता है यही।
चाहते यदि कामना की पूर्ति तो यह भी सही॥

काम में सड़क के मजदूरों की तरह न लगो, बादशाहों की तरह डट जाओ, ताकि तुम्हें उसमें उतना ही आनन्द मिले जितना आनन्द किसी खेल खेलने में मिलता है। मुर्दा दिल होकर काम करने मत बैठो। अपने आप में डूब जाओ और समझ लो कि बादशाह हमारे नौकर हैं। आकाश मण्डल के चमकते हुए तारों की तरह काम करो।

अति निडर होकर वे सदा,
सब वस्तुओं को देखते।
सुख प्रेम अपने से रहित,
वे अन्य का नहिं लेखते॥
बस प्रेम का तो मूल्य,
बुधजन प्रेम ही हैं मानते।
नव फूल खिलने का मजा है,
पक्षिगण ही जानते॥

काम की जिम्मेदारी और फल की आशा हृदय-तल से बिलकुल निकाल ही दो। अपने अफसरों को अपनी आत्मा से बढ़कर न समझो। तुम्हारा जीवात्मा ही बड़ा अफसर है। खबरदार, कर्तव्य का ख्याल और अफसरों के भय से तुम्हारी शक्ति का ह्रास न होने पावे। अफसरों की आज्ञानुसार किया हुआ काम बनावटी और अपनी इच्छानुकूल किया हुआ काम सारभूत होता है।

—★—

★ इच्छा का त्याग ★

● श्री विजयकृष्ण गोस्वामी

इच्छाओं का त्याग कर दो, उनसे ऊपर उठो: आपको दुगुनी शान्ति मिलेगी—तात्कालिक शान्ति और अन्त में इच्छित फल। स्मरण रक्खो कि आपकी कामनाएँ तभी सिद्ध होंगी, जब आप उनसे ऊपर उठकर परम सत्य में पहुँचेंगे। जब आप जानकर या अनजाने अपने-आपको ब्रह्मत्व में लीन कर देते हैं, तभी और केवल तभी आपकी कामनाओं के पूर्ण होने का काल सिद्ध होता है।

आपका कर्म सफल हो, इसके लिये आपको उसके परिणाम पर ध्यान नहीं देना चाहिये, आपको उसके फल की परवाह नहीं करनी चाहिए। साधन और उद्देश्य को मिलाकर एक करदो; काम ही आपका उद्देश्य या लक्ष्य बन जाय।

बस, परिणाम और फल की परवा मत करो। सफलता अथवा असफलता मेरे लिये कुछ नहीं है, मुझे काम जरूर करना होगा; क्योंकि मुझे काम प्यारा लगता है। मुझे काम केवल काम के लिये ही करना चाहिये। काम करना मेरा उद्देश्य है; कर्म में प्रवृत्त रहना ही मेरा जीवन है। मेरा स्वरूप, मेरी असली आत्मा स्वयं शक्ति है। अतः मुझे काम करना ही होगा।

परिणाम के लिए चिन्ता मत करो, लोगों से कुछ भी आशा न रक्खो; अपने काम पर अनुकूल अथवा प्रतिकूल आलोचना के विषय में व्याकुल मत होओ।

जब आप इच्छाओं को छोड़ देते हैं, तभी, केवल तभी वे सफल होती हैं। जब तक आप अपनी अभिलाषा रूपी धनुष डोरी को तनी रक्खेंगे, अर्थात् इच्छा, आकांक्षा और अभिलाषा करना जारी रक्खेंगे, तब तक तीर दूसरे पक्ष के वक्षःस्थल तक कैसे पहुँचेगा। ज्यों-ही आप उसे छोड़ देते हैं, त्यों-ही वह सम्बन्धित प्रतिपक्षी के हृदय को भेद देता है।

× × ×

त्याग तो आपको सर्वोत्तम स्थिति में रखता है; आपको उत्कर्ष की स्थिति में पहुँचा देता है।

× × ×

त्याग क्या है ? अहंकारयुक्त जीवन को त्याग देना। निःसंशय और निःसन्देह अमर जीवन व्यक्तिगत और परिच्छिन्न जीवन को खो डालने से मिलता है।

× × ×

त्याग के अतिरिक्त और कहीं वास्तविक आनन्द नहीं मिल सकता; त्याग के बिना न ईश्वर-प्रेरणा हो सकती है, और न प्रार्थना।

★

हमारे अनन्त अनादि सद्‌गुरुदेव प्रभु

❀ श्री अवनीश कुमार भटनागर (सहारनपुर)

श्री प्रभु कृपा पात्रो,

मैं आप ही में से एक और आप ही के मध्य होने वाली एक बात पर कुछ शब्द कहना चाहूँगा।

जब श्री आनन्दकन्द अनन्त श्री सद्‌गुरुदेव जी महाराज के चरणारविन्दु के विषय में आपस में हम लोग उनके लीला-चरित्रों आदि का बखान करते हैं तो कहीं न कहीं यह बात अवश्य आ जाती है कि "श्री सद्‌गुरुदेव जी तो अब रहे नहीं। इसी पंक्ति को लेकर मैं अज्ञानी कुछ कहने का प्रयत्न कर रहा हूँ। मृत्यु हो जाने से सब कुछ समाप्त नहीं हो जाता, शरीर छूट जाने पर अन्त नहीं समझना चाहिये। क्योंकि एक बीज से जिस प्रकार पौधा निकलता है और वही पौधा वृक्ष बनता है। वृक्ष से लकड़ी, लकड़ी अग्नि स्वरूप धारण करके कोयला बन जाती है और फिर राख में परिवर्तित होती रहती है। और वृक्ष का एक हिस्सा फल भी होता है जो पुनः बीज बनकर पौधा बन जाता है। कहने का तात्पर्य यही है कि वस्तु का परिवर्तन होता रहता है। मृत्यु को अन्तिम सत्य नहीं मानना चाहिए, जैसे आज भी लोग अपने पूर्वजों का श्राद्ध, कर्म आदि करते हैं। यानी मरने के पश्चात् भी उनका अस्तित्व स्वीकारा जाता है। चाहे वह परिवर्तित होकर पितृ रूप में ही सही। चाहे मरने वाला पापात्मा हो, चाहे पुण्यात्मा हो, आत्मा सब की अमर कही गई है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में आत्मा की अमरता का सन्देश देते हुए श्रीकृष्ण भगवान कहते हैं—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि
नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो
न शोषयति मारुतः॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयम-
क्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुर-
चलोऽयं सनातनः॥

(गीता २/२३-२४)

जब हमारे शास्त्र आत्मा की अमरता का इतना बड़ा प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि चाहे वह पुण्यात्मा हो चाहे पापात्मा, आत्मा अजर और अमर है। तो फिर बन्धुओ! हमारे अनन्तश्री सद्‌गुरुदेव प्रभु तो परम आत्मा, महान आत्मा, विश्वात्मा हैं। क्या वह लुप्त हो सकते हैं? नहीं कदापि नहीं। उन्होंने अपने बैठने का स्थान मात्र बदला है, अब वह यहां नहीं बैठते हैं, श्री सिद्धलोक में बैठते हैं। विद्यमान आज भी पूर्व की भांति ही हैं, उसी प्रकार अपने कार्य को करते हैं। कृपा करते हुए दर्शनलाभ कराते हैं। सदैव अपने बच्चों पर कृपा दृष्टि करते रहते हैं। हाँ उन तक पहुँचने का मार्ग अब इतना सरल नहीं रह गया है, थोड़ा कठिन हो गया है। उन्होंने हम सबको श्री गुरुमन्त्र की वह ताली दी हुई है जिससे कि उन तक पहुँचने वाले रास्ते के

प्रत्येक बन्द दरवाजे का ताला खोलकर उन तक पहुँचा जा सकता है, अगर ताली का ही प्रयोग नहीं करोगे या ठीक प्रकार से नहीं करोगे तो फिर ताला किस प्रकार खुल सकेगा। यह तो उन परम कृपालु की असीम कृपा की झलक है जो उन दयानाथ ने करोड़ों के विशाल जन-समूह में से हमें कुछ हजारों को ही खोज-खोजकर अपनी शरण में ले लिया, हमने उनको नहीं खोजा। अगर हम उनको खोजने निकलते तो हमें पता चलता कि एक योग्य गुरु, पूर्ण गुरु, वास्तव में गुरु की क्या कीमत होती है। एक प्रसिद्ध सन्त ने कहा है कि अगर दीक्षा देकर गुरु मिलते हैं तो सौदा सस्ता ही है। वैसे गुरु कहलाने वाले तो संसार में बहुत मिलेंगे, परन्तु सच्चे गुरु को ढूंढने में कितनी कठिनाई होती है। और फिर भी वह मिले या न मिले। और हमें तो उन दयालु दयानाथ के श्री चरणारविन्द तो मिले ही मिले और न जाने क्या-क्या? मैं उनका कहाँ तक वर्णन कर सकता हूँ। हम अज्ञानी माया के चक्कर में ऐसे फँसे रहे कि उन श्री का सत्कार तक भी नहीं कर सके, सदैव चूकते ही रहे।

श्री शिवपुराण में महा सिद्ध सकल ऐश्वर्यों के स्वामी भगवान शङ्कर कहते हैं— गुरु ही मैं हूँ, मैं ही गुरु हूँ और मैं ही समय-समय पर जन-कल्याणार्थ गुरु रूप में अवतीर्ण होता रहूँगा। शिव सत्य है। शिव सत्य है तो सद्गुरु सत्य है, सद्गुरु का स्वरूप सत्य है, और सत्य का कभी विनाश नहीं होता। भगवान श्रीकृष्ण को पाँच हजार वर्ष से अधिक हो चुके हैं इस धराधाम को त्यागे हुए, तो क्या वह नहीं हैं, या वह अपने भक्तों पर कृपा नहीं करते उनको प्रार्थना स्वीकार नहीं करते, करते हैं। कबीर, नानक, बुद्ध, महावीर को कई सौ वर्षों से ज्यादा हो चुके हैं महाप्रस्थान किये हुए तो क्या उनकी कृपावृष्टि आज नहीं होती, दर्शनलाभ नहीं होते, होते हैं? उनका अस्तित्व आज भी पूर्व की भाँति ही है। योग दर्शन सद्गुरु परम तत्त्व के विषय में कहता है।

गुरु कालेनानवच्छेदात

गुरु के सामने काल (मृत्यु) का कोई अस्तित्व नहीं है। सद्गुरु का काल से अवच्छेद नहीं है। वह इससे परे है।

यह सद्गुरु तो सदैव थे, अब भी हैं, और सदैव रहेंगे। बस उनकी असीम कृपा सदैव हम पर बनी रहे।

★ जैसा आप सोचते हैं, वैसे ही आप बन जाते हैं। अपने आपको पापी कहो, तो अवश्य ही पापी बन जाओगे; अपने को मूर्ख कहो, तो अवश्य ही आप मूर्ख हो जाओगे; अपने को निर्बल कहो, तो इस संसार में कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो आपको बलवान् बना सके। अपने सर्वशक्तित्व को अनुभव करो, तो आप सर्वशक्तिमान् हो जाते हैं।

धारणा

डा० ऋषिराज वाशिष्ठ

धारणा अष्टाङ्ग योग का छठा अङ्ग है जो कि अन्तरङ्ग योग के अन्तर्गत आता है, इसका अर्थ होता है धारण करना अर्थात् चित्त की वृत्तियों को सम्भालने वाला। महर्षि पतञ्जलि ने धारणा की बहुत ही मौलिक परिभाषा दी है—

"देशबन्धस्यचित्तस्य धारणा"

अर्थात् देश-विदेश में चित्त का दृढ़ सम्बन्ध ही धारणा है इस प्रकार आभ्यान्तर या बाह्य किसी भी देश में चित्त का स्थिरीकरण ही धारणा है। धारणा एक प्रयास है जिसमें ध्याता, ध्येय, ध्यान का अलग-अलग अस्तित्व रहता है। धारणा में चित्त को एक विषय पर बार-बार प्रयास के द्वारा एकाग्र करने का प्रयत्न किया जाता है। क्योंकि इसमें चित्त अपनी तीन अवस्थाओं क्षिप्त, विक्षिप्त व मूढ़ में रहता है जो रज व तम गुण से प्रभावित रहता है एवम् सत्तोगुण सुप्तावस्था में रहता है। इसी गुण के कारण ही चित्त एक विषय पर एकाग्र नहीं हो पाता है। आभ्यान्तर देश के अन्तर्गत मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूरक चक्र, अनाहद चक्र, नासिकाग्र भाग, भृकुटि आदि आते हैं। बाह्य देश के अन्तर्गत सूर्य, चन्द्रमा, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, देवमूर्ति, देवगण व उनकी प्रतिमा आदि आते हैं।

विभिन्न शास्त्रों में विभिन्न प्रकार से धारणा का विवेचन है जो निम्नलिखित है—

हृदये पञ्चभूतानां धारणा च पृथक-पृथक।
मनसो निश्चलत्तेन धारणा समाधियते॥

अर्थात् निश्चल मन से अपने हृदय में पांच प्रकार की धारणाओं का अलग-अलग अभ्यास करने से समाधिस्थ अवस्था की प्राप्ति होती है। जो निम्न प्रकार हैं—

धारणा	स्थान	रङ्ग	देवता	आकार	फल
१. पृथ्वीय	हृदय	पीला	ब्रह्मा	चौकोर	स्तम्भनी
२. जलीय	हृदय से कण्ठ कूप	श्वेत	विष्णु	अर्ध चन्द्राकार	द्रावणी
३. आग्नेय	कण्ठ कूप से तालु	लाल	महेश, रुद्र	त्रिकोण	दाहिनी
४. वायवीय	तालु से भ्रूमध्य	मेक वर्ण (काला)	ईश्वर	षट्कोण	भ्रामणी
५. आकाशीय	ब्रह्मरन्ध्र	श्याम	परब्रह्म	व्योमाकार	शोषणी

धारणा के फल के विषय में इस प्रकार से वर्णन मिलता है—

"स्तंभिनी द्राविणी चैव दाहिनी भ्रामणी तथा शोषणी च भवेत्तस्या भूतानां च धारणा।"

(१) पृथ्वीय धारणा—इसके सिद्ध हो जाने पर साधक में स्तम्भन की शक्ति आ जाती है अर्थात् वह किसी भी वस्तु को पृथ्वी के समान ठोस बना सकता है एवं पाताल तक जाने की शक्ति आ जाती है। पृथ्वी तत्व पर उसका पूर्ण अधिकार हो जाता है।

(२) जलीय धारणा—इसके सिद्ध हो जाने पर योगी किसी भी वस्तु को जल के समान द्रावित कर सकता है और जल तत्व से उसका कोई अनिष्ट नहीं हो सकता। इससे साधक पर किसी भी प्रकार के विष का प्रभाव नहीं होता है।

(३) आग्नेय धारणा—इसके सिद्ध हो जाने पर साधक बिना आग के ही किसी को भी जलाने में समर्थ हो जाता है व अग्नि तत्व से उसका कोई अनिष्ट नहीं होता।

(४) वायवीय धारणा—इसके सिद्ध हो जाने पर समस्त जगत को घुमाने की सामर्थ्य पा लेता है एवम् वायु में गमन करने की सिद्धि होती है।

(५) आकाशीय धारणा—आकाशीय धारणा के सिद्ध हो जाने पर किसी भी वस्तु को सुखा सकता है एवम् साथ ही साथ अणिमादि अष्ट सिद्धियों से युक्त हो जाता है।

अन्य हठयोग ग्रन्थों में भी धारणा के विषय में विशद् वर्णन मिलता है जो इस प्रकार है—

मनसा वाचा कर्मणा धारणा पञ्च दुर्लभा।
विज्ञ या सर्व योगी सर्व दुःख प्रमुच्यते॥

अर्थात् मन, वचन एवम् कर्म से कहीं भी यह पञ्च धारणा दुर्लभ है। जो मन, वचन, कर्म तीनों को एकाग्र करके धारणा का अभ्यास करता है उसे ही धारणाओं में सफलता मिलती है।

योगाचार्यों का मत है कि उपरोक्त पञ्च धारणा के सिद्ध हो जाने पर साधक सम्पूर्ण क्लेशों से मुक्त हो जाता है। पाँच घड़ी तक इस धारणा का अभ्यास करने से दिव्य दृष्टि, प्रज्ञाशक्ति की प्राप्ति होती है, ऐसा योगियों का मत है। गीता में भी महान योगी श्रीकृष्ण ने धारणा के फल पर प्रकाश डाला है।

वस्तु तिष्ठति कौन्तेय धारणासु यथाविधि।
मरणं तु जनमं दुखं च सुखं च विमुञ्चति॥

अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए धारणा के विषय में बतलाते हैं कि जो साधक यथाविधि धारणा का अभ्यास करते हुए उसमें सिद्ध हो जाते हैं वह जन्म-मरण दुःख एवम् सुख के भँवर से मुक्त हो जाते हैं।

अतः उपरोक्त धारणा-विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि यह समाधि की पहली अवस्था व अति आवश्यक अङ्ग है। अतः धारणा का योगशास्त्र में अत्यधिक महत्व है।

श्री कृष्णकान्त झा को जीवनदान

श्री केशवदेव उपाध्याय (वाराणसी)

योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्ध गुफा सवांई (आगरा) के कृपापात्र शिष्य श्री कृष्णकान्त झा के नाम से अवश्य ही परिचित होंगे। भाई श्री कृष्णकान्त जी इस समय जिला झाँसी के निवासी हैं। यह विलक्षण कृपा प्रसंग वर्ष १९७१-७२ का है। श्री कृष्णकान्त जी की तबियत अचानक खराब होना आरम्भ हो गई। शरीर में बराबर बुखार बना रहने लगा। भूख, प्यास धीरे-धीरे बिल्कुल नाममात्र की रह गयी। शनैः शनैः शरीर का वजन घटने लगा एवम् दर्द बढ़ता गया। शरीर इतना कमजोर एवम् अशक्त हो गया कि हाथ, पैर, गर्दन एवम् सिर अपनी सामर्थ्य से इधर-उधर नहीं हो पा रहे थे। संक्षेप में कहा जाय तो शरीर मात्र अस्थि कंकाल की तरह बन गया था। इसी बीच आर्थिक स्थिति की ऐसी विपन्नता आ गई कि सुबह भोजन प्राप्त हो गया तो सायंकाल परिवार के सदस्यों को अन्न का दर्शन होगा कि नहीं, यह त्रिलोकीनाथ ही समझ सकते थे। रोग-दर्द से छुटकारा पाने के लिए दवा कराना अनिवार्य था, इनके सिवा घर में और कोई आर्थिक स्रोत का साधन नहीं था एवम् इनकी ऐसी स्थिति में नौकरी करना असम्भव था। अतः घर का एक-एक सामान बेचकर प्राणरक्षा का प्रयास किया जाता रहा। भाई जी का वजन घटकर मात्र तीस किलोग्राम रह गया था। सब कुछ प्रयास करने के पश्चात् भी रोग घटने के बजाय क्रमिक रूप से बढ़ता ही गया। शुभेच्छु परिवारजनों एवम् इष्ट मित्रों की सलाह पर भाई जी को डा० जैन अस्पताल के डाक्टरों की एक कमेटी को दिखलाया गया। डाक्टरों की इस विशेष टीम ने शरीर के प्रत्येक अङ्ग का एक्सरे करवाया। एक्सरे एवम् एक्सरे रिपोर्ट में कोई भी रोग परिलक्षित नहीं हुआ। इस कारण घोर मानसिक अशान्ति एवम् असन्तोष पैदा हो गया और इसी के परिणामस्वरूप मन भी रोगी हो गया। धीरे-धीरे इनके मन से जीवन की आशा ही समाप्त हो गई। ऐसी विषम एवम् विपरीत परिस्थितियों में भी अपने सद्गुरु देव भगवान के प्रति यह दृढ़ श्रद्धा एवम् विश्वास रखना कि वे जो कुछ भी करेंगे हमारे भले के लिए ही करेंगे एवम् इनकी साध्वी धर्मपत्नी का यह विचार कि यदि संस्कारवश पतिदेव का शरीर छूट ही गया तो पूज्य श्री गुरुदेव भगवान के चरणों की कृपा से उन्हीं का स्मरण एवम् चिन्तन करती हुई बच्चों का पालन पोषण करूँगी एवम् यदि इसके बाद भी विपत्ति ने साथ नहीं छोड़ा तो सभी बच्चों के साथ सवांई धाम की सेवा

गुरुदेव भगवान की छत्रछाया में रहकर करूँगी। यह आराध्यदेव जी की विशेष कृपा एवम् इस जोड़े के एकनिष्ठ गुरुभक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

इसके बाद भाई जी ने अपने घरेलू डाक्टर से पुनः यह निवेदन किया कि डाक्टर साहब हमारी अच्छी प्रकार से जाँच-पड़ताल कर इलाज कीजिए जिससे मैं जल्दी स्वस्थ हो जाऊँ। डाक्टर ने कुछ जाँच कराने को लिखकर दिया एवं जाँच का परिणाम प्राप्त होने के बाद भाई जी ने डाक्टर को पुनः अपने घर पर बुलाया। डाक्टर ने पूरी जाँच रिपोर्ट को गौर से देखा एवम् नाक सिकुड़ा कर अंग्रेजी में कहा—"मिस्टर कृष्णाकान्त, नाउ यू आर प्लेइंग विद योर लाइफ" इसके बाद उसने उदास मुँह बनाकर हिन्दी में कहा कि कृष्णकान्त जी आपके दोनों लंग्स खराब हो चुके हैं एवम् आप चन्द दिनों के मेहमान हैं। अब जरा आप अपने को इन परिस्थितियों में सोचने का कष्ट करें। एक साध्वी एवम् अनन्य पतिव्रता पत्नी के पति को उसका घरेलू डाक्टर उसके सामने ही उसके पति से उसके रोग के सम्बन्ध में इस प्रकार की सूचना दे तो क्या होगा। शायद ऐसे घोर कलिकाल में सावित्री भी होती एवं उसके समक्ष भी ऐसी विषम परिस्थिति उत्पन्न होती तो उसके भी धैर्य का बाँध टूट जाता, परन्तु धन्य है आदरणीया बहन जी जिनका धैर्य ऐसी विषम परिस्थिति में भी हिमालय की तरह अडिग रहा।

दिन प्रतिदिन भाई जी के स्वास्थ्य की क्षीणता एवम् रोग के कारण हमारे झाँसी मण्डल के गुरु भाई-बहनों का उदास होना स्वाभाविक-सा था। आदरणीय गुरु-भाई इनको देखने भी आते रहे। शारीरिक मानसिक एवम् आर्थिक विपन्नता तो उस दिन अपनी पराकाष्ठा से कुछ ही नीचे थी, जिस दिन आदरणीय भाई श्री झा जी के पास न तो खाने के लिए घर में खाद्यान्न था एवम् दवा कराने के लिए न एक भी दमड़ी। इसी समय हमारे आदरणीय गुरुभाई एवम् झा जी के एक अनन्य सहयोगी श्री जैन साहब उनके निवास स्थान पर कुशल क्षेम पूछने उनके घर आये। उस समय श्री भाई जी चारपाई पर चित्त लेटे थे एवम् ऐसी स्थिति में थे कि उनका अपना कोई अङ्ग बिना किसी के सहारे एक स्थिति से दूसरी स्थिति में नहीं हो सकता था। उनके बगल में उनकी पतिव्रता एवम् साध्वी धर्मपत्नी बैठी थी। जब जैन साहब ने कमरे में प्रवेश किया तो वे दम्पत्ति यही विचार कर रहे थे कि बिना खाना खाये तो कुछ दिन रहा जा सकता है परन्तु दवा के बिना शरीर कैसे जीवित रहेगा। श्री जैन साहब के साथ उचित कुशल क्षेम के उपरान्त आदरणीय भाई श्री झा जी ने कहा कि जैन साहब बहुत ही उचित समय पर श्री प्रभुजी ने आपको भेजा है। आप ऐसा करें कि हमारे घर के ये दो बर्तन (बर्तनों की तरफ इशारा करके) किसी दुकानदार के हाथ बेचकर कुछ पैसा लेकर हमारी आज की दवा ले आवें, कल की वे दाता जानें, आज तो शरीर को कुछ आराम मिले एवम् प्राण रक्षा की जा सके। उनकी ये करुणा-भरी बातें सुनकर श्री जैन साहब की आँखें अनायास ही आँसुओं से छलछला आयीं एवं उन्होंने बड़े नम्रता भरे शब्दों में निवेदन किया कि भाई जी, ऐसी कौन-सी बात है कि हमारे रहते आपको बर्तन बेचने पड़ेंगे। आप धैर्य रखें, मैं अभी आ रहा हूँ। इतने में भाई श्री झा जी की आँखों से आँसू छलछला गये।

श्री जैन साहब ने कहा कि भाई जी आप रो रहे हैं। श्री झा भाई जी ने अपने आँसू पोंछते हुए कहा कि नहीं भाई जैन साहब मैं कष्ट के कारण नहीं रो रहा हूँ, रोना तो इसलिए पड़ रहा है कि आराध्यदेव श्री सद्-गुरुदेव भगवान के चरण-कमलों में जब भी अपनी पीड़ा एवम् कष्ट का प्रार्थना-पत्र भेजता हूँ, वे करुणानिधान अपने कृपा पत्र द्वारा यही आदेशित करते हैं कि चिरञ्जीवी गोपाल (आदरणीय भाई श्री कृष्णकान्त जी को प्रभुजी द्वारा पुकारा जाने वाला नाम) तुम संसार में बहुत ही कठिन कर्म विपाक लेकर आये हो, रज एवम् पुष्प प्रसाद भेज रहा हूँ, इसका सेवन कर लेना एवम् चलते-फिरते, उठते-बैठते अपने गुरुमन्त्र का जाप किया करो। उनकी आज्ञाओं को अक्षरशः पालन करने का प्रयत्न भी करता हूँ परन्तु पूर्णरूपेण पालन नहीं कर पाता हूँ। खराब कर्म विपाक तो इस संसार में मैं लेकर पैदा हुआ हूँ, इसके कष्ट को आप एवम् हमारे अन्य गुरुभाई-बहन यथाशक्ति बाँटते हैं एवं हमारे लिए स्वयं कष्ट सहन करते हैं, इसमें हमारे गुरुभाई-बहनों का क्या कसूर है कि वे भोगें। खैर वार्तालाप समाप्त हुआ एवं जैन साहब दवा की पर्ची लेकर दवा लेने चले गए।

श्री जैन साहब दवा के साथ-साथ घर का कुछ खाद्य पदार्थ भी लेते आये। इस प्रकार एक-दो दिन तो घर का कार्य चला परन्तु आदरणीय श्री झा भाई जी के मन में बार-बार यह बात कचोट रही थी कि इस प्रकार कितने दिन तक जीवन व्यतीत किया जायेगा। श्री प्रभुजी यह असह्य विपन्नता कब तक भोगवाते रहेंगे। इसी सोच-विचार में एक-दो दिन का समय व्यतीत हो गया। गया। इसके बाद एक दिन इनके मन में यह विचार पक्का हो गया कि हमारा यह शरीर ज्यादा समय तक नहीं रह पायेगा। अतः अपनी सहधर्मिणी से इन्होंने कहा कि अब तो हमें पूजाघर में ही ले चलो। इन्होंने अपनी पत्नी से उपरोक्त रहस्य छिपा लिया एवम् केवल इतना कहा कि हमें बड़ी बेचैनी एवम् कष्ट का अनुभव हो रहा है, मुझे जल्दी से पूजा गृह में ले चलो। इनकी धर्मपत्नी ने इन्हें सहारा देकर पूजा गृह में ले जाकर लिटा दिया। लेटने के बाद श्री झा जी ने कातर दृष्टि से योगेश्वर महाप्रभु श्री राम-लाल जी महाराज के चरणों की तरफ देख-कर मन ही मन प्रणाम किया एवम् उसके बाद जब आराध्यदेव जी के चरण-कमलों की तरफ देखकर ज्योंही प्रणाम किया तो नेत्र खुले के खुले रह गये। आदरणीय भाईजी ने खुली आँखों देखा कि श्री प्रभुजी एक जीप में सवार होकर बड़ी ही तीव्र गति से आश्रम से चलकर उनके घर की तरफ आ रहे हैं, जीप उनके दरवाजे तक आकर रुक गयी। इसी बीच श्री प्रभुजी के वाहन (जीप) ने जिन-जिन गाड़ियों को ओवर टेक किया उसको श्री भाई जी ने अपने नेत्रों से देखा। जब जीप दरवाजे पर आकर खड़ी हुयी तो आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज दौड़ते हुए उनके पास आये। इतने नजारे को करीब एक घण्टे के बाद तक वे देखते रहे, फिर इसके पश्चात् वे अपनी पूर्वावस्था में आ गये। इनकी पत्नी जो पास में बैठी थी, यह देखकर अशुभ की आशंका कर रही थी कि इनकी पलकें क्यों नहीं गिरतीं, इन्हें क्या हो गया है? परन्तु भाई जी की आँखों से होते अविरल अश्रुपात को देखकर उनके मन को यह शान्ति मिल जाया करती थी कि अभी जीवित हैं।

यह दृश्य ज्योंही समाप्त हुआ हम लोगों के वरिष्ठ गुरुभाई श्री ईश्वरी प्रसाद बडूर जी इनके घर पर पधारे एवम् बोले, अबे छोकरे ! यह खबर आयी है कि श्री प्रभुजी महाराज आज तुम्हारे घर आ रहे हैं। श्री भाई साहब ने पूछा कि कौन खबर लाया है एवम् श्री प्रभुजी कब आ रहे हैं, तो भाई श्री बडूर साहब ने बस इतना ही बतलाया कि यह खबर जो लाया, उससे मेरी मुलाकात नहीं हो पाई परन्तु उसने यह खबर हमारे घर पर दी कि श्री प्रभुजी दोपहर के करीब तुम्हारे घर पर आ जायेंगे। यह शुभ सम्वाद झाँसी मण्डल में बिजली की तरह प्रसारित हो गया। श्री झा भाई साहब के निवास पर आगन्तुक भाई-बहनों का तांता लगना आरम्भ हो गया। इसमें मजे की बात यह थी कि जो भी दर्शनार्थी गुरुभाई-बहन आते थे, वे वही पदार्थ एवम् फल लेकर आते थे जिसे डाक्टर ने श्री झा भाई जी को पथ्य के लिए बतलाया था। अल्प समय में ही काफी मात्रा में दर्शनार्थी गुरुभाई-बहन एकत्र हो गये।

श्री प्रभुजी के आने का समय करीब जानकर श्री झा भाई साहब ने अपनी धर्मपत्नी से कहा कि देवी ! वे त्रिलोकीनाथ हमारे घर आ रहे हैं एवम् मैं चारपाई पर पर पड़ा रहूँ, यह मर्यादा का स्पष्ट उलंघन है। यह ठीक है कि मैं चल-फिर नहीं सकता परन्तु कम से कम अपने दरवाजे पर उनकी अगवानी तो हमें करनी ही चाहिये। जल्दी से हमें स्नान कराकर दरवाजे पर बिठला दो। इनकी धर्मपत्नी ने निवेदन किया कि आपको तीव्र ज्वर है, बिना डाक्टर का परामर्श लिये आपको स्नान कराना ठीक नहीं है। डाक्टर से तत्काल परामर्श लिया गया जिसमें डाक्टर ने कहा कि स्नान कतई न कराया जाय। तब श्री झा भाई जी ने कहा कि यदि स्नान नहीं कराया जा सकता तो पानी गरम करके उसमें तौलिया भिगोकर हमारा शरीर पोंछ दो एवम् हमारे कपड़े बदल दो। उन्होंने कहा कि मुझे स्नान किये करीब डेढ़ माह हो चुका है एवम् ऐसी स्थिति में मैं बिना स्नान किये श्री गुरुजी के शरीर को कैसे स्पर्श करूँगा।

श्री झा भाई का शरीर गरम पानी में गमछा भिगोकर पोंछा गया एवम् उन्हें कपड़े पहनाकर घर के दरवाजे पर बिठा दिया गया। कुछ ही समय पश्चात् इन्तजार की घड़ियाँ समाप्त हुयीं एवम् आनन्दकन्द श्री सद्गुरुदेव जी महाराज की जीप की आवाज सुनाई दी। प्रेम के दिवाने हमारे गुरुभाई-बहन माला पहनाने दौड़े परन्तु अकारण श्री प्रभुजी, बिना चरणपादुका के ही दौड़ते हुए भाई श्री कृष्णकान्त जी झा के पास पहुँच गये। इस दौड़ में श्री प्रभुजी की धोती का एक छोर भी खुल गया, जिसे सम्हालते हुए वे भाई जी के पास पहुँचे एवम् पीछे से ब्रह्मचारी चरण पादुका लेकर पहुँचा। श्री प्रभुजी को देखकर श्री झा भैया को अकारण तीव्र अश्रुपात होने लगा और वे सिसक-सिसक कर रोने लगे। परम भक्त वत्सल श्री प्रभुजी ने अपनी धोती से उनके आँसू पोंछे एवं बोले—गोपाल ! योगी के बच्चे रोते नहीं और इस प्रकार अपने वात्सल्य प्रेम से उन्हें कृतार्थ कर दिया। तत्पश्चात् झाँसी मण्डल के अन्य गुरुभाई-बहनों द्वारा आरती पूजन एवम् माल्यार्पण का कार्यक्रम समाप्त हुआ। श्री गुरुजी महाराज अपने आसन पर विराजमान थे एवम् अन्य गुरुभाई-बहन

उनके सामने फर्श पर बैठे थे। श्री झा साहब को अहैतुकी कृपा के दाता ने अपने सामने बैठने का आदेश दिया कि अरे लल्ला ! भजन सुनाओ। श्री भाई जी ने सोचा कि शायद श्री प्रभुजी हमारी शारीरिक अस्वस्थता के बारे में ठीक-ठीक उतना नहीं जानते, जितनी हमें कमजोरी एवम् कष्ट है। वे उस आज्ञा को टाल गये। कुछ समय पश्चात् फिर वही आदेश मिला एवम् इस बार भी वे उसे टाल गये। तीसरे बार श्री प्रभु जी अपनी ओजस्वी वाणी से कुछ गम्भीर मुद्रा में बोले—क्यों लल्ला ! तुम मेरी आज्ञा का पालन नहीं करोगे। श्री झा साहब की समझ में अब यह बात आ गयी थी कि अनाथनाथ कुछ कृपा करने के लिए ही भजन सुनना चाहते हैं। उन्होंने धीरे-धीरे कष्ट में ही हाथ बढ़ाकर हारमोनियम पर महात्मा सूरदास का एक भजन अपनी कुछ पंक्तियों को जोड़कर इस प्रकार सुनाना आरम्भ किया—

प्रभु जी, तुम तजि और कौन पे जाऊँ,
 ....किसके हाथ बिकाऊँ।

भजन सुनने के बाद श्री प्रभुजी ने अपनी मधुर मुस्कान के साथ एक मिश्री की छोटी डेली उठाई एवम् भाई जी के हाथ में देकर कहा, इसे अभी खा जाओ। कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है लल्ला, तुम अभी स्वस्थ हो जाओगे। कल आराम करना एवम् परसों से अपनी ड्यूटी पर जाना। तुम अवश्य-अवश्य ठीक होकर अपनी ड्यूटी पर जाओगे। श्री झा भाई जी को मिश्री खाने के तुरन्त बाद अपने अन्दर शक्ति-संचार का अनुभव हुआ। इसके पश्चात् गुरुदेव की आज्ञा पर भाई जी ने दो-तीन भजन और सुनाये। इसके बाद अहैतुकी कृपा के दाता ने फिर मिश्री का एक छोटा टुकड़ा उठाया एवम् भाई जी के हाथों में देकर कहा—"लल्ला ! इसे अभी हमारे सामने ही खा जाओ।" मिश्री का टुकड़ा खा लेने के बाद श्री आराध्य देव जी ने मुस्कराते हुए धीरे से कहा—अरे लल्ला गोपाल अब आज से ही तुम्हारे घर में लक्ष्मी का वास हो जावेगा। इस प्रकार करीब साढ़े तीन घण्टे तक श्री प्रभुजी भाई श्री कृष्णकान्त जी के घर पर विराजमान रहे एवम् अपनी अलौकिक क्रियाओं के द्वारा उपस्थित सभी बच्चों का लौकिक एवं परलौकिक कार्य करते रहे। श्री प्रभुजी जब जाने को तैयार हुए तब तक भाई श्री कृष्ण-कान्त जी के अन्दर जीवनी शक्ति ने अच्छी प्रकार से कार्य करना आरम्भ कर दिया था, अतः उन्होंने हाथ जोड़कर निवेदन किया, प्रभो ! आप आये कहाँ से थे। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी ने अपनी मधुर मुस्कान के साथ कहा—लल्ला गोपाल हम गये ही कहाँ थे कि आते। हम तो सदैव यहाँ हैं। श्री झा भइया ने प्रार्थना की कि प्रभो ! मैं सांसारिक प्राणी हूँ एवं सांसारिक दृष्टिकोण से पूछ रहा हूँ कि आप आये कहाँ से हैं। श्रीमुख ने बत-लाया कि लल्ला ! दतिया आये थे, वहाँ पता चला कि तुम्हारी तबियत ज्यादा खराब है, अतः देखने चला आया और अब मैं चल रहा हूँ। गगनभेदी जयकारों के बीच श्री प्रभुजी आदरणीय भाई श्री कृष्णकान्त जी का कार्य करके चले गये।

सन्तों की वाणी में—

★ सोऽहम् जप का रहस्य ★

❀ संकलनकर्ता—श्री आर० सी० ठाकुर
२०२/६ जे० के० कालोनी, कानपुर–२०८०१०

सोऽहम् मन्त्र मानव देह में परमेश्वरी शक्ति तभी सञ्चारित करता है जब सर्व समर्थ गुरुदेव अपनी बैखरी वाणी का आश्रय लेकर दूसरों को दृग वाग स्पर्श व संकल्प दीक्षा के माध्यम से शक्ति संचरण करते हैं। यह मन्त्र हमारे सभी धार्मिक ग्रन्थों में, उपनिषदों में विद्यमान होने पर भी क्रियाशील नहीं होता। यह हंस महाविज्ञान युक्त, दिव्य-शक्ति पूर्ण अमृत विद्या है, संजीवनी बूटी है जो अति कल्याणकारी अकल्पनीय आध्यात्मिक लाभ प्रदान करने का हेतु है। इस मन्त्र का आरम्भ चिन्तन करते हुए अर्थ सहित जप करने से इस निष्कर्ष पर अवश्य पहुंचा जा सकता है कि मानव दूसरा कोई अच्छा कर्म करे या न करे, केवल सोऽहम् जप के द्वारा (अजपाजप) सर्व कर्मों को शुद्ध करके उच्चतम आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। लेखक न तो कोई योगी है न ध्यानी, न ज्ञानी और ना ही चिन्तनशील साधक पर गुरु-कृपा पर अटूट श्रद्धा होने के कारण मन में उठे कुछ प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास कर रहा है, यदि अंश मात्र भी किसी का हित होता हो तो लेखक अपना अहोभाग्य मानकर किये गये प्रयास को सार्थक समझेगा। इस लेख में रामायण, गीता, उपनिषद् महान सन्तों के दिव्य सन्देशों के मोतियों की माला पिरोई गई है अपना कुछ नहीं, अपना यदि कुछ है तो त्रुटियां एवं दोष। क्योंकि मनुष्य की कृति में दोष होना सम्भव है। विद्या भी वह बहुत ही गहन तथा अनुभवगम्य है।

प्रश्न (१) सोऽहम् पर महान सन्तों एवं ग्रन्थों के दृष्टिकोण क्या हैं ?

(२) सोऽहम् एवं हंस में भेद ?

(३) सोऽहम् मन्त्र का प्रभाव क्या है ?

(४) क्या सोऽहम् जप से महावाक्यों की अन्तर अनुभूति हो सकती है ?

(५) क्या सोऽहम् जप से षटचक्र भेदन अथवा कुण्डलिनी जागरण सम्भव है ?

(६) क्या षटचक्र भेदन के बिना आत्मबोध या आत्म-दर्शन सम्भव है ? आदि-आदि छोटी-छोटी शंकायें इस छोटी पुस्तक के कलेवर में देने का प्रयास किया गया है। यदि इससे जनसाधारण का, योग जिज्ञासुओं का अथवा दीक्षा प्राप्त गुरुभाई-बहनों का अंशमात्र भी हित होता है तो लेखक अपना अहोभाग्य मानकर किये गये प्रयास को सार्थक समझेगा।

विद्वजनों से, गुरुजनों से एवं अनुभवी साधकों से करबद्ध प्रार्थना है कि इस प्रयत्न को तिरष्कृत न करके स्वस्थ चित्त से विचार करें। यदि कहीं दोष हो तो लेखक पर अनुग्रह करके सूचित करें एवं उपयोगी सुझाव दें। क्योंकि मनुष्य की कृति में दोष होना स्वाभाविक है और विद्या भी यह अति अनुभवगम्य एवं गहन है।

सोऽहम् जप अथवा हंस जप के विषय में मोक्ष परक ग्रन्थों के महान सन्तों के दृष्टिकोण

रामचरित मानस में सन्त शिरोमणि तुलसीदासदास जी ने उत्तर काण्ड में सोऽहमस्मि वृत्ति का गुणगान इन चौपाइयों के माध्यम से इस प्रकार किया है—

सोऽहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा। दीप सिखा सोइ परम प्रचण्डा॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा॥

अर्थात् सोऽहमस्मि (वह ब्रह्म मैं हूँ) यह जो अखण्ड (तैल धारावत कभी न टूटने वाली) वृत्ति है, वही (उस ज्ञान रूपी) जब आत्मानुभव के सुख का सुन्दर प्रकाश फैलता है तब संसार के मूल भेद रूपी भ्रम का नाश हो जाता है। तात्पर्य यह है कि जड़ चेतन की गांठ तभी खुल पाती है।

पातञ्जलि योग दर्शन के सूत्र ३ के अनुसार "तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" कहकर इसकी पुष्टि की गई है। चित्त की वृत्तियों के निरोध होने के पश्चात् उस समय द्रष्टा (आत्मा) की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है अर्थात् वह कैवल्य अवस्था को प्राप्त हो जाता है। इसके उपरान्त भी मायारूपी ९ प्रकार के चित्त के विक्षेपों का उसको सामना करना पड़ता है। जो निम्नलिखित हैं—

(१) व्याधि, (२) स्त्यान (अकर्मण्यता), (३) संशय, (४) प्रमाद, (५) आलस्य, (६) अविरति (इन्द्रियों की आसक्ति), (७) भ्रान्ति दर्शन, (८) अलब्ध व भूमिकत्व, (९) अनवस्थितत्व (चित्त न लगना)। इन पर विजय प्राप्त करना केवल गुरुकृपा प्रसाद सोऽहम् जप की अखण्ड वृत्ति ही साधक को बचा सकती है।

गीता में दसवें अध्याय के ३५वें श्लोक के माध्यम से अखिलात्मा श्रीकृष्ण ने यह सन्देश दिया है—

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम्।

उन्होंने इसी अजपा गायत्री की ओर संकेत करके ही यह भाव दर्शाया है कि वेदों की जितनी भी छन्दोबद्ध ऋचायें हैं उन सब में गायत्री की ही प्रधानता है। श्रुति, स्मृति, उपनिषद् एवं पुराणों में इसी अजपा गायत्री की महिमा विस्तृत रूप में विद्यमान है। इसी श्रेष्ठता एवम् सर्वव्यापकता के कारण भगवान ने गायत्री को अपना स्वरूप बतलाया है। इसके उपरान्त भी 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' कहकर भी इसी जप को सर्वोत्कृष्ट जप बतलाया है जिसकी पुष्टि चौथे अध्याय में अपाने जुह्वति प्राणं प्राणे अपानं तथा परे कहकर भी की है।

सन्त सुन्दरदास ने सोऽहम् मन्त्र की महिमा निम्न प्रकार कही है—

शास्त्र अरु वेद, पुरान पढ़ै किन, पुनि व्याकरण पढ़ै जो कोई।
संध्या करैं गहै षटकर्महि, गुन अरु ज्ञान विचारैं सोई॥
सारा काम तबै बनि आवै, मन में सब तजि राखै दोई।
सुन्दर दास कहैं सुन पण्डित, सोऽहम् जाप बिन मुक्ति न होई॥

(क्रमशः)

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

का

योग मन्दिर अलूपुर, जि० पानीपत (हरियाणा)

में

जन्मोत्सव समारोह १९९६

प्रति वर्ष की भाँति हमारे आनन्दकन्द सद्गुरुदेव अनन्त विभूषित योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की पावन जन्मस्थली अलूपुर धाम में दिनांक १९-१०-९६ से २१-१०-९६ तक उनका त्रिदिवसीय जन्मोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया। दूर-दूर से गुरुभाई-बहन, संगीत मण्डलियाँ इस पुनीत पर्व पर पहुँची तथा उत्सव हर्षोल्लास से मनाया गया। जिसमें उनके प्रिय भक्तों द्वारा निम्नलिखित कार्यक्रम सम्पन्न किये गये—

(१) प्रभात फेरी—

दिनांक १९-१०-९६ को प्रातः ५ बजे से ७ बजे तक गाँव में प्रभात फेरी निकाली गई, जिसका सञ्चालन आदरणीय बाबा ज्ञानीराम जी ने किया जिसमें बाहर से आये भाई-बहनों ने और गाँव के लोगों ने बड़े उत्साहपूर्वक भाग लिया। श्री प्रभुजी एवम् श्री सद्गुरुदेव जी का भजन-कीर्तन द्वारा गुणगान करते हुए सत्संग मण्डल ने श्री सद्गुरुदेव द्वार से फेरी को प्रारम्भ कर सम्पूर्ण ग्राम में भ्रमण करते हुए श्री गुरु महाराज जी के पूज्य पिता पं० श्री देवीराम जी के नाम से बने धर्मार्थ औषधालय के द्वार पर समाप्त किया।

(२) सत्संग मण्डप—

दिनांक १९-१०-९६ को एक सुन्दर एवम् विशाल पण्डाल का निर्माण किया गया, जिसमें श्री प्रभुजी एवम् श्री सद्गुरुदेव जी महाराज का भव्य दरबार सजाया गया। सजावट का कार्य कुरुक्षेत्र मण्डल की आचार्या बहन वेदमतीजी एवं उनके सहयोगियों ने बहुत सुन्दर ढङ्ग से किया। इसके अतिरिक्त इस मण्डल ने योग मन्दिर जिसमें श्री सद्गुरुदेव जी की मूर्ति स्थापित है, एवम् सत्संग भवन के दरबार को भी सँवारकर सुन्दर वस्त्रों व आभूषणों से अलंकृत किया। इस प्रकार मध्याह्न काल से उत्सव का कार्यक्रम आरम्भ हुआ और भजन-कीर्तन से सारा पण्डाल ही नहीं सम्पूर्ण ग्राम आनन्दित हुआ।

(३) स्वागत—

बाहर से आने वाले भाई-बहनों के लिए गेट पर स्वागत कक्ष बनाकर सबका विधिपूर्वक स्वागत किया गया, जिसका सञ्चालन जींद मण्डल के सचिव श्री लाजपतराय गुप्ता ने किया तथा इसी कक्ष से दिनांक २१-१०-९६ को भण्डारे के प्रसाद के रूप में चार-चार लड्डुओं के डिब्बे भी वितरित किये गए।

(४) परमयोगिनी बहन श्री उमाशक्ति जी का शुभागमन—

दिनांक २०-१०-९६ को प्रातः से ही कुरुक्षेत्र मण्डल, झांसी मण्डल एवम् अमृतसर मण्डल की ओर से बहन वेदमती जी, बहन आशारानी दुवे, बहन शान्ति देवी डागा तथा श्री कृष्णाकान्त झा के संचालन में संकीर्तन प्रारम्भ हुआ। बाबा ज्ञानीराम जी के भजनों का आनन्द भी दूर-दूर से आये सभी भाई-बहनों ने प्राप्त किया। सायंकाल तक उत्सव में आने-वालों का तांता लगा रहा। सायंकाल ४ बजे आदरणीय परमयोगिनी बहन उमाशक्ति जी का शुभागमन हुआ जिसके साथ कितने ही गुरुभाई-बहन इस धाम के दर्शनार्थ पहुँचे। बहन जी पहले योग-मन्दिर पहुँची, जहाँ पर उन्होंने श्री सद्गुरुदेव जी के चरणों में पुष्पाञ्जलि अर्पित की, तत्पश्चात श्री सत्संग भवन होते हुए पण्डाल में विराजमान हुयीं। उनके साथ में कितने ही बुद्धिजीवी एवम् गणमान्य गुरुभाई-बहन, जो भिन्न-भिन्न स्थानों से जैसे कि— आगरा, मुरैना, गुना, झरिया, धनबाद, हरियाणा के कई स्थानों के लोग, एवं उत्तर प्रदेश, पंजाब आदि से आये लोग, पण्डाल में आकर सुशोभित हुए। आगरा से आयी गुरु बहनों ने डा० कुसुम चतुर्वेदी के नेतृत्व में काव्य-पाठ एवं सुन्दर भजनों से श्रोताओं को आकर्षित किया। कुरुक्षेत्र तथा आगरा से आये छोटे-छोटे बच्चों ने भी इस गुरुधाम के नाम की अति सुन्दर प्रार्थना कर श्रोताओं को मोहित किया, शब्द थे—

"हम तेरे नन्हें बच्चे हैं, अलूपुर में आये हम।
हे योगेश्वर, हे सिद्धेश्वर, श्री गुरु चन्द्रमोहन ॥"

इसके पश्चात् माननीया बहन श्री उमाशक्ति जी ने भजनोपदेश तथा अपने प्रवचन में श्री प्रभु जी एवं श्री सद्गुरुदेव जी द्वारा हुई कृपाओं तथा योग-प्रचार का गुणगान करते हुए श्रोताओं को सन्देश दिया कि "हे सद्गुरु के प्यारो! तुम सद्गुरु का नाम चमकाओ।" इसके पश्चात् विभिन्न कीर्तन मण्डलियों ने सारी रात भक्ति-रंग बर्षाए रखा, जिसमें साधकों का सत्संग में ध्यान भी लगा और श्रोताओं ने पूरा आनन्द प्राप्त किया।

(५) पूज्य श्री जन्मोत्सव (दि० २१-११-९६)—

प्रातः चार बजे जो कि श्री सद्गुरुदेव जी के जन्म का समय है, हमारी अलूपुर संस्था के प्रधान श्री सोमदत्त शर्मा आरती के लिए तैयार हुए तो कुरुक्षेत्र, अमृतसर, एवम् झांसी के संयुक्त मण्डल कीर्तन में इतने मुग्ध हो गये कि कीर्तन के समापन पर श्री सोमदत्त जी ने आनन्दित होकर कहा कि—

"मैंने सोचा था कि आधा पौना घण्टा कुछ बोलूँगा किन्तु बहनों के सत्संग में ऐसे खो गया जैसे गोपियों का प्रेम देखकर ऊधो ने भाव-विभोर होकर अपनी हार मान ली थी।"

इस प्रकार प्रातः की आरती के पश्चात् आगन्तुकों ने गांव के मनोरम वातावरण एवम् सुन्दर प्रकृति की छटा का आनन्द लिया। जगह-जगह लगे हुए ट्यूबलों के स्वच्छ जल में गुरुभक्तों ने स्नान कर रजवाहे के समीप स्थित श्री सद्गुरुदेव जी की पुण्य तपोभूमि के दर्शन किये। सात बजे हवन यज्ञ का आरम्भ योग मन्दिर में उसी स्थान पर हुआ, जहाँ पीपल के वृक्ष के नीचे श्री सद्गुरुदेव जी का जन्म हुआ। यह कार्य आचार्य श्री ऋषिराम

शास्त्री ने विधिवत् सम्पन्न किया, तत्पश्चात् श्री सद्गुरुदेव जी की मूर्ति पर पञ्चामृत से स्नान प्रारम्भ हुआ और श्रद्धालुओं ने पञ्चामृत चढ़ाकर पं० पुष्कर दत्त जी के हाथों प्रसाद ग्रहण किया। ब्र० श्री ओमप्रकाश पालीवाल, (लखनऊ वाले), आचार्य श्री पूर्णचन्द शर्मा, (ऋषिकेश) ब्र० श्री सतीश शर्मा (बुलन्दशहर) आदि ने भी श्री गुरु महाराज जी को स्नान कराया और प्रसाद ग्रहण किया। यह कार्य दोपहर तक चलता रहा। श्री प्रभुजी के श्रद्धालु बच्चे जो जाखोली एवं आस-पास के गाँव के रहने वाले हैं, एक सप्ताह पूर्व हरिद्वार गये और हर की पौड़ी से गंगाजल लेकर कावड़ियों के रूप में अलूपुर तक पैदल यात्रा की, और उन्होंने गंगाजल श्री सद्गुरुदेवजी की मूर्ति पर चढ़ाया। यह कार्य जाखोली के गायक श्री जयकुमार शर्मा तथा बिलौना (असन्ध) के लाला कपूरचन्द के निर्देशन में हुआ।

पूजनीया परमयोगिनी बहन उमाशक्ति जी ने कुछ देर सत्संग करने के पश्चात् श्री सद्गुरुदेव जी को पञ्चामृत स्नान कराया और प्रसाद ग्रहण किया। तत्पश्चात् गाँव के सभी पण्डितों को आमन्त्रित कर ब्रह्मभोज का कार्य सम्पन्न किया गया, जिसके पश्चात् सभी भाई-बहनों ने भण्डारे का प्रसाद ग्रहण किया।

मैं अलूपुर गाँव के सभी सहयोगियों का, विशेष करके पं० ताराचन्द के परिवार का, लाला मोतीराम के परिवार का, श्री तेलूराम, श्री कुलदीप तथा सतबीर रोहिल्ला का एवम् जीन्द मण्डल के प्रधान श्री वीरभान बागड़ एवम् पूरे जीन्द मण्डल का आभारी हूँ, जिन्होंने पूर्ण श्रद्धा के साथ इस कार्यक्रम को सफल बनाने हेतु पूर्ण योगदान दिया। बाहर से आये श्रद्धालु भाई-बहन विशेषकर पिजौर के श्री ओमप्रकाश शर्मा, श्री प्रेमचन्द शर्मा एवं कुरुक्षेत्र मण्डल का भी बहुत आभारी हूँ, जिन्होंने समारोह में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। लाला ताराचन्द प्रधान, गऊशाला, मण्डी पानीपत ने, श्री पवन कुमार गर्ग, राईस शैलर मतलौडा ने पूरा-पूरा सहयोग देकर उत्सव को सफल बनाया। मैं उनका अति धन्यवादी हूँ। मुझे आशा है कि भविष्य में भी श्री सद्गुरु के चरणों में निष्ठा रखने वाले सभी गुरु-भाई-बहन इस पूज्य पवित्र ग्राम के इस शुभ अवसर पर श्री गुरु-चरणों में अपने श्रद्धा के पुष्प अर्पण करने हेतु एवं उत्सव को सफल बनाने का प्रयास करते हुए, अपना पूरा सहयोग देंगे एवम् अपने सद्गुरुदेव का विश्व में नाम चमकायेंगे और योग-प्रचार में अग्रसर रहेंगे।

जे० एस० गर्ग
(सचिव)

दि० १५-११-१९९६]

श्री सिद्ध गुफा योग साधक मंडल कानपुर का वार्षिकोत्सव

दि० ३०-११-१९९६ से दि० २-१२-१९९६ तक

श्री सिद्धगुफा योग साधक मण्डल कानपुर के वार्षिकोत्सव के उपलक्ष में श्री चरणों में सादर समर्पित एक योग सम्मेलन कानपुर में तीन दिनों का (दि० ३०-११-९६ से २-१२-९६) आयोजित किया, जिसमें हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, बनारस, लखनऊ, आगरा, गोरखपुर, ऋषिकेश तथा भारत के अन्य कई शहरों से आदरणीय गुरु-भाइयों ने पदार्पण किया।

इस कार्यक्रम के प्रारम्भिक सत्रारम्भ में प्रातः योगासनों, हठयोग की क्रियायें नेती नौली आदि का अभ्यास एवम् प्रदर्शन, सुदक्ष ब्रह्मचारीगण, जो सुदूर ऋषिकेश, सवाई (आगरा) से आए थे, ने अपनी संरक्षता में नवागन्तुकों को कराया तथा निःशुल्क यौगिक क्रियायें भिन्न-भिन्न रोगों के निदान हेतु करवाई गयीं।

योग क्या है, एवं सद्गुरु तत्व की व्याख्या आचार्य श्री चन्द्रहास जी शर्मा, विभागाध्यक्ष शिक्षा विभाग, श्री लालबहादुर शास्त्री विश्वविद्यालय, नई दिल्ली। जो कि स्वयम् एक उच्चकोटि के ध्यान-योग की स्थिति प्राप्त हैं तथा जिनके ऊपर योगेश्वर सद्गुरु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की अपूर्व कृपायें रही हैं ने विस्तार से सरलतम भाषा में परिभाषित किया। दूसरे वक्ता डा० विजयसिंह, गणित विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर ने अपने प्रवचन में योगविद्या को जानने से सब कुछ जाना जा सकता है बतलाते हुए योगियों की सामर्थ्य पर प्रकाश डाला। रात्रिकालीन सत्र में हिमाचल प्रदेश से आये हुए आचार्य पूर्णचन्द्र जी पन्त ने भारतीय दर्शन के वैज्ञानिक पक्ष को उजागर करते हुए अपने सारगर्भित व्याख्यान में योग की अपरिहार्यता, आज मानव जीवन में हर कर्मयोग विद्या में है, इस पर प्रकाश डाला। सभी व्याख्याताओं के विचारों को साररूप देते हुए अध्यक्ष श्री ओमप्रकाश जी पालीवाल ने इस कार्यक्रम को सुनियोजित करने वाले कानपुर वासी सत्संगियों को धन्यवाद एवम् आशीर्वाद देते हुए श्री सिद्धयोग की महत्ता पर सुन्दर उपाख्यानों का उल्लेख करते हुए उपदेश किया। यह कार्यक्रम तीन भागों में विभक्त था— (१) जीवन-तत्व साधन, (२) षट्कर्म एवम् (३) ध्यान में विभक्त था। इस निःशुल्क योग प्रचार कार्यक्रम में आई० आई० टी० कानपुर के बहुत से छात्र और वरिष्ठ प्रवक्ता लोगों ने भाग लिया।

हालांकि सम्पूर्ण कार्यक्रम में प्रभु श्री रामलाल संगीत विद्यालय,झांसी की शिशु मण्डली कार्यक्रम में कमीमहसूस होती रही, परन्तु वरिष्ठतम गुरुभाई श्री भुवनेन्द्र झा भैया, टूण्डला निवासी, ब्रह्मचारी राजनरेश शुक्ला के भजनों से कार्यक्रम में चार चांद लग गये।

अन्त में दिनांक ३ दिसम्बर १९९६ को कार्यक्रम की समाप्ति पर पतित-पावनी भगवती गङ्गा में बचे हुए फूल विसर्जित करने गये गुरु-भाइयों के समूह की अध्यक्षता श्री पूर्णचन्द्र शास्त्री, नाहन, हिमाचल प्रदेश निवासी ने की और पवित्र वेद मन्त्रों के उच्चारण के साथ गङ्गा की मध्यधारा में पुष्प विसर्जित किये गए और नाव में बैठकर हम लोगों ने गङ्गा पार कर दूसरी तरफ जाकर स्नान किया और श्री प्रभुजी की आरती उतारी गई तथा श्री चरणों की कृपा उस समय दिखलाई दी जब आरती की ज्योति उस पवित्र जल पर करीब २० गज तक जलती हुई गई और अन्त में एक नाव के नीचे आने के फलस्वरूप बुझ गई। इस कार्यक्रम की मुख्य बात यह रही कि इसमें श्री प्रभु जी की कृपा का भान प्रत्येक व्यक्ति ने हरएक कार्यक्रम में किया। भारत के प्रत्येक भाई से निवेदन है कि इस कार्यक्रम में अवश्य भाग लिया करें। निवेदक : श्री सिद्ध गुफा योग साधक मण्डल, कानपुर

SIDDHAYOGA Regd. No. L. AG. 008. JANUARY 1997

प्रेषक कार्यालय :—

सिद्ध योग

योग-सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र सवाई (एत्मादपुर) आगरा।

PRINTED MATTER

Book-Post

श्री ....

....

....

....

—: निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः :—

वाञ्छा सज्जनसंगमे परगुणेऽप्रीतिर्गुरौ नम्रता,
विद्यायां व्यसनं स्वयोषति रतिर्लोकापवादाद्भयम्।
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले,
एते येषु वसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः ॥

अर्थात्

सत्संगति में इच्छा, दूसरों के गुणों में प्रसन्नता, गुरुओं के प्रति नम्रता, विद्या में व्यसन, अपनी स्त्री से ही प्रेम, लोक निन्दा से डर, शिव में भक्ति, अपने दमन में शक्ति और दुष्टों के संग का त्याग, ये निर्मल गुण जिनमें निवास करते हैं उन मनुष्यों को नमस्कार है।

प्रकाशक एवं मुद्रक—विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिन्टिंग प्रेस, बर्ड्ई कर्मा, ताजगंज, आगरा से मुद्रित एवं श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (आगरा) से प्रकाशित। फोन : 330426